आत्म-चिन्तन

—केशरीमल जैन

ॐ

आत्म-चिन्तन

बन्धप्पमोक्खो तुज्झत्थेव—श्री आचारांग सूत्र

—तुम्हारा बन्धन और मोक्ष तुम्हारे ही हाथ में है।

लेखक—

केशरीमल जैन

प्रकाशक—

अध्यात्म — आयतन

शाजापुर [ग्वालियर]

प्रथमावृत्ति १५००] [मूल्य तीन आने

इसी लेखक द्वारा

लिखित--

उद्धारक महावीर

श्री महावीर जयन्ती और निर्वाण के उत्सव पर
सर्व साधारण में वितरण करने के लिये
आधुनिक ढंग से लिखी हुई सुन्दर पुस्तक

मूल्य एक प्रति, आधा आना; सौ प्रति, तीन रुपये

पता-श्रीमहावीर प्रेस ब्यावर (राजपूताना)

जैन-ज्योति

समाज दशा-दिग्दर्शक सरस गद्य-काव्य

मूल्य एक प्रति पोस्टेज सहित एक आना

पता-अध्यात्म-आयतन, शाजापुर (ग्वालियर)

अनुवादित--

श्रीसूत्रकृतांग सूत्र :: श्रीआचारांग सूत्र

[हिन्दी छायानुवाद]

मूल्य प्रत्येक की एक प्रति का छै आना

पता-श्री श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स ऑफिस
९ भांगवाड़ी, बम्बई नं० २

॥ ॐ ॥

कृतज्ञता-प्रकाश

सुप्रसिद्ध समाज-सेवक श्रीमान् अमोलकचन्दजी
लोढ़ा ने बगड़ी स्था० जैन श्रीसंघ की ओर
से इस पुस्तक पर ५१) रु० पुरस्कार तथा
प्रकाशन के लिये जो सहायता देकर मुझे
प्रोत्साहन देने के साथ ही लेखकों को
इस प्रकार सम्मानित करने का
समाज के सामने एक नवीन
आदर्श रक्खा है, एतदर्थ मैं
आपका और श्री संघ का
अत्यन्त कृतज्ञ हूं।

—केशरीमल जैन

सूची

विषय पृष्ठ

निवेदन

सुख और दुःख संसार की अवस्थाएँ हैं। जो संसार में है, उसे इनको भोगना पड़ता है। जिसको ज्ञान है, जो इनके कारण को जानता है, उसको दुःख दुःखरूप मालूम नहीं होते और न वह सुख में ही अपने आपको भुला बैठता है क्योंकि वह जानता है कि जो दुःख हैं, वे अपने कर्मों के ही फल हैं और जो सुख हैं, वे क्षणभंगुर हैं। सच्चा सुख तो आत्मीय ही है, हमारी आत्मा में ही अन्तर्निहित है।

जो इसको नहीं समझते, वे अपने दुःख को दूर करने के लिये, सुख को प्राप्त करने के लिये बाहर ही भटकते फिरते हैं और समझते हैं कि कहीं बाहर से उन्हें सुख प्राप्त हो जायगा। पर, सुख का—सच्चे और शाश्वत सुख का स्रोत तो आत्मा में है; सुख की कुंजी आत्मज्ञान है, आत्म-जागृति है, आत्मबल की प्राप्ति है, जिसको प्राप्त करने का साधन 'आत्मचिन्तन' है।

कोई भी कार्य, लौकिक हो या पारलौकिक हो, आत्म-बल से ही सिद्ध होता है। अपने जीवन में पद-पद पर मनुष्य इसका अनुभव करता रहता है। अतएव, आत्म-ज्ञान के लिये, आत्मबल जागृत करने के लिये अपने आपको जानना और समझना अर्थात आत्मचिन्तन करना आवश्यक है।

हमारे यहाँ आत्मचिन्तन-अध्यात्म के साधन और क्रियाएं इतनी रूढ़ होगई हैं कि वे मात्र परलोक के कल्याण के लिये ही समझी जाती हैं। यही कारण है कि वे आधुनिक तर्कशील व्यक्ति को रुचती नहीं—समझ में नहीं आती। जो हो, पर उनका मूल सिद्धान्त तो सत्य ही है। यदि उनको मनोविज्ञान, तर्क और व्यावहारिकता की भूमिका पर खड़ा किया जाय तो वे आधुनिक विचारशैली के लिये भी उपयुक्त होकर लाभदायक हो सकती हैं।

ऐसी आवश्यकता ने ही मुझे इस विषय को इस प्रकार तैयार करने के लिये प्रेरित किया है।

मैं इस योग्य नहीं कि अध्यात्म जैसे गंभीर विषय पर कलम चला सकूं या उपदेश दे सकूं। तथापि इसका क्रिया भाग तो महात्माओं के वचनों का संग्रह ही होने के कारण और आदेशात्मक भाग विषय को उपयोगी बनाने के लिये आवश्यक होने के कारण मैंने इसे इस प्रकार प्रस्तुत कर दिया है। मैंने विषय को रोचक, तर्कसम्मत, व्यावहारिक

और उपयोगी बनाने का काफी प्रयत्न किया है। यदि पाठकों ने इसको अपने दैनिक जीवन में स्थान देकर लाभ उठाया तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

धन्य है, उत्साही मुनि श्री धनचन्द्रजी और श्रीमान् डा० दुर्गाशंकरजी नागर, सम्पादक—कल्पवृक्ष, जिनके लगातार प्रोत्साहन देने पर मैं यह कार्य कर सका। श्री० धीरजलाल भाई, अधिष्ठाता, जैन गुरुकुल और श्रमणोपासक श्री० पन्नालालजी भटेवरा, रि० इन्स्पेक्टर शिक्षा-विभाग ग्वालियर का मैं आभारी हूँ, जिन्होंने कई तात्त्विक सूचनाएँ दीं। पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, न्यायतीर्थ ने मुझे इस कार्य में जो सहयोग दिया है, वह सधन्यवाद स्मरणीय है।

शतावधानी भारतभूषण पं० मुनि श्रीरत्नचन्द्रजी और कविवर्य उपाध्याय पं० मुनि श्रीअमरचन्द्रजी ने अत्यन्त रुग्ण और अशक्त होते हुए भी आशीर्वचन लिख देने का जो कष्ट उठाया है, उसके लिये मैं आपका अतीव कृतज्ञ हूँ।

खेद है, मेरी अनुपस्थिति और शीघ्रता के कारण पुस्तक में अशुद्धियाँ रह गई हैं; आशा है, विद्वान पाठक इन्हें सुधार कर पढ़ेंगे। इति शम्।

जैन गुरुकुल, ब्यावर
कार्तिकी पूर्णिमा
संवत १९९५

विनीत—
केशरीमल जैन

आशीर्वचन

शतावधानी भारतभूषण पं० श्रीरत्नचन्द्रजी महाराज
और
कविवर्य उपाध्याय पं० श्री अमरचन्द्रजी महाराज

'आत्म-चिन्तन'! क्या? अपना चिन्तन, अपना मनन, अपना विचार—अर्थात् अपने आपको सोचना-समझना। अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड में सर्वत्र अपना ही, आत्मा का ही आलोक फैला हुआ है। हमारी ही—आत्मा की ही सत्ता, वह सत्ता है, जिससे कि विश्व का अणु-अणु गति पा रहा है, जीवन पा रहा है। अगर यह न हो तो क्या हो? उत्तर स्पष्ट है—'०'। चैतन्य के बिना विश्व की समस्या शून्य बिन्दु के समकक्ष नहीं है, तो और क्या है? कुछ भी नहीं। अच्छा तो इतना प्रभुत्व होते हुए भी हमारी—चैतन्य की यह गिरी-पड़ी दशा क्यों? यों कि हमने अपने आपका कभी शान्त, स्थिर भाव से चिन्तन

नहीं किया। अनन्तकाल से प्रकृति के माया-जाल को देखते रहे हैं, सतत-सन्तत-निरन्तर एकमात्र उसीका चिन्तन करते रहे हैं, दुनिया की भूल-भुलैया में हमने अपने आप-को भुला दिया—बिलकुल भुला दिया। अगर कभी एक बार भी ज़रा ठीक रंग-ढंग से हम अपना चिन्तन कर लेते, होश सँभाल लेते 'तो इस संसार सागर से बेड़ा पार हो जाता।'

हमारा पवित्र आगम साहित्य! हाँ, क्या है उसमें? अथ से लेकर इति पर्यन्त उसमें एक-एक-एकमात्र यह आत्म-चिन्तन ही तो ठसाठस भरा हुआ है। आगम के अक्षर अक्षर में-मात्रा-मात्रा में आत्मचिन्तन का विश्व-भेदी गंभीर घोष गूंज रहा है। प्रभु महावीर का एक भी शब्द ऐसा नहीं है, जिसमें कि आत्म-चिन्तन की साङ्गोपाङ्ग झलक न मिल सकती हो। हाँ, कोई देखने वाला होना चाहिये। 'जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ'—आचारांग। आगम ही नहीं, पूर्वाचार्यों का भी यही लक्ष्य रहता आया है। उनकी भी ज्ञानगंगा की पतित-पावनी अमल धवल धाराएँ इसी भूमिका पर प्रवाहित होती रहती हैं। उनके ग्रन्थ, वे ग्रन्थ हैं, जिनमें आध्यात्मिकता अपने असली रूप में पूर्णता के पथ पर चमक उठी है। 'अप्पा णाणु मुणेहि तुहुं, जो जाणइ अप्पाणुं।'

हर्ष है कि आज बीसवीं शताब्दी में भी भारत, अपने जरठातिजरठ आध्यात्मिक आग्रह को नहीं छोड़ रहा है। जहां आज अखिल विश्व भौतिकता के मद्यपान से उन्मत्त हो रहा है, सभ्यता के नाम पर गगनाङ्गण से वायुयानों द्वारा सर्वथा अरक्षित खुले नगरों पर मृत्यु की वर्षा कर रहा है, निरीह स्त्रियों, पुरुषों तथा कोमल-कान्त-कलेवर बालकों को हजारों की संख्या में एक साथ निर्दयता पूर्वक भून रहा है, वहां भारत में अब भी आध्यात्मिकता का शान्ति-निर्झर झर-झर-झर ध्वनि से प्रवाहित हो रहा है-कलिकलुषित हृदयों के कलि-मल को धो रहा है। यही कारण है कि वर्तमान भौतिक युग में भी यहां समय समय पर आत्म-चर्चा सम्बन्धी अनेकों छोटी-मोटी पुस्तकें प्रकाशन के रंग मंच पर अवतरित होती रहती हैं। श्रीयुत केशरीमलजी भी ऐसी ही एक नन्हीं-सी पुस्तिका धार्मिक संसार की सेवा में लेकर उपस्थित हुए हैं। पुस्तक का नाम भी यही रखा है, 'आत्म-चिन्तन' अर्थात् आत्मा का चिन्तन—अपना चिन्तन।

उक्त गंभीर विषय पर लिखने के लिये जो आध्यात्मिकता जीवन में उतरी हुई होनी चाहिये, वह लेखक में नहीं मालूम होती। लेखक प्रत्यक्ष में हमें मिला है, वह एक साधारण सुधारक मनोवृत्ति का नवयुवक है। अपनी जैन समाज के प्रति उसके हृदय में सविशेष आदर है, वह समाज में कुछ क्रान्ति-कुछ उन्नति देखना चाहता है।

उसके गहरे से गहरे अन्तस्तल में सब से बढ़कर जो लहर है, वह भावुकता की है। आध्यात्मिक क्षेत्र में अपना अधिकार नहीं होते हुए भी उसने जो यह पुस्तक लिखी है, वह भी भावुकता के आवेग में ही लिखी है। परन्तु भावुकता, आध्यात्मिकता की जननी होती है, अतः आध्यात्मिकता के दुरारोह पथ पर भी उसका यह प्रथम पद-निक्षेप प्रशंसनीय है। भावुकता द्वारा गूंथी हुई यह शब्द-सुमनमाला खूब अच्छी महक देती है। हमारा आशीर्वाद है, यह अपने जीवनकाल में अधिक धर्मानुरागी भक्त-भ्रमरों को आकृष्ट करती रहे और अपनी चिर-जीवनयात्रा सफलता के साथ पूर्ण करे।

———— ———

ॐ

आत्मोन्नति के सिद्धान्त और नियम

१ परमात्मा ही परम तत्त्व होने से वही हमारे जीवन का लक्ष्य और आदर्श है। हमारी आत्मा का शुद्ध रूप ही परमात्मा है। आत्मा ही सर्व शक्तियों और गुणों का भंडार है। सब अवस्थाओं में उसी का सहारा लेना चाहिये। उसको शुद्ध रूप में प्रकट करना इस मानव जीवन का परम ध्येय है।

२ आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्ता और भोक्ता है, वह जैसे कर्म करता है वैसे ही उसको फल मिलते हैं। सद्विचारों और सत्कर्मों के कर्मों का नाश और उनमें परिवर्तन किया जा सकता है।

३ आरोग्य, ऐश्वर्य, सुख, शांति, बल, आनन्द आदि सब प्रकार के लौकिक और पारलौकिक, शारीरिक और मानसिक सुख आत्मा में ज्ञान, संयम, श्रद्धा और एकाग्रता द्वारा जागृति होने से प्राप्त होते हैं ।

४ रोग, दरिद्रता, विपत्ति, निर्बलता, चिन्ता, निराशा, आदि अवस्थाएं आत्मज्ञान के अभाव के कारण ही दुःखरूप होती हैं। आत्मज्ञान हो जाने पर दुःख दुःख नहीं जान पड़ता और न उससे चिन्ता और निराशा ही उत्पन्न हो सकती है। आत्मज्ञान को आत्मचिन्तन द्वारा प्राप्त करके आत्मबल जागृत करके आनन्दमय जीवन व्यतीत करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है।

५ अशुद्ध विचार से, अनिष्ट के चिन्तन से आत्मबल नष्ट होता है। इससे अपनी और दूसरों की हानि होती है। अपनी उन्नति चाहते हो,, जीवन में सुख-शांति चाहते हो तो सदैव

तो सदैव उत्तम विचार करो—आत्मा के गुणों का ही चिन्तन करो।

६ आत्मोन्नति के लिये ब्रह्मचर्य प्रधान साधन है। यथाशक्ति संयम से रहने का प्रयत्न करो। इसके लिये हमेशा अपने मन को काम में लगाये रखना, दृढ संकल्प—प्रतिज्ञा, सादा और अल्प आहार, व्यायाम, सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन और सज्जनों की संगति बड़े सहायक होते हैं।

७ अपने मनको हमेशा शुभ विचारों से युक्त, उच्च, आशावादी और प्रसन्न बनाये रक्खो। मन में जैसे विचार होंगे, उसी प्रकार का जीवन बन जावेगा। मन की अवस्था पर शरीर का स्वास्थ्य निर्भर है, इसको कभी मत भूलो। चिन्ता, रोग, शोक, भय, शंका, दरिद्रता, निराशा, क्रोध आदि के घातक विचारों को अपने मन से दूर रक्खो।

८ शरीर के द्वारा हम सब कार्य कर सकते हैं।

इस लिये शरीर को स्वस्थ, नीरोग और बलवान बनाये रखने के लिये स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना जरूरी है। उत्तम विचार और संयमित जीवन से ही शरीर स्वस्थ रह सकता है। नियम से व्यायाम करना भी आवश्यक है। घूमना अच्छा व्यायाम है। सादा भोजन करना चाहिये। जल्दी सोना और जल्दी उठना चाहिये। प्रत्येक कार्य आहार-विहार में संयम रखना चाहिये। दुर्व्यसनों से बचना चाहिये। नियम से आत्म-चिन्तन करने से शरीर के सदुपयोग का ध्यान बना रहता है।

९ परोपकारी जीवन ही सच्चा जीवन है। यथाशक्ति दूसरों का भला करो, कभी किसी का बुरा मत सोचो।

१० नित्य नियमित रूप से आत्म चिन्तन करो। इन उच्च विचारों को अपने सांसारिक व्यवहार में प्रकट करने का प्रयत्न करो। असफल होने

पर निराश मत हो । अपने सिद्धान्तों और नियमों में दृढ़ रहकर अपने प्रयत्न में लगे रहो; आत्म विश्वास रक्खो । धैर्य और सतत उद्योग से निश्चय ही सफलता मिलती है ।

११ आत्मा के सिद्धान्त को साधारण समझ कर योंही मत टाल दो । उच्च और सत्य सिद्धान्त सूत्र रूप में सरल और साधारण ही होते हैं । इन्हीं सिद्धान्तों पर चल कर कई मनुष्यों ने अपने जीवन में आश्चर्यजनक उन्नति की है । जिनके जीवन सुखी और सफल हैं, उनका अध्ययन करेंगे तो उनको किसी न किसी रूप में इन्हीं सिद्धान्तों को अपनाया हुआ पाओगे फिर तुम उन्नति क्यों नहीं कर सकते हो ? अवश्य कर सकते हो, अवश्य कर सकते हो !

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

रहो मत आत्म-ज्ञान से हीन !

रहो मत आत्म-ज्ञान से हीन !

कौन हम, हमारा क्या है रूप ?
जग क्या ? परम विचित्र अनूप ।
कैसा बना हुआ है भव-कूप ?
इन्हीं तीन प्रश्नों के भीतर सदा रहो लवलीन !

रहो मत आत्म-ज्ञान से हीन !

ज्ञान बिन प्राप्त न होगी शान्ति,
मोह से सदा रहेगी भ्रान्ति,
हृदय में होगी दुःख की क्रान्ति,
आत्म-ज्ञान बिन भरत-खण्ड है, दीन, हीन,
छबिहीन !

रहो मत आत्म-ज्ञान से हीन !

दीजिये सब बातों को छोड़,
कीजिये श्रम मन से जी-तोड़,
ज्ञान में लो निज श्रद्धा जोड़ ।
सरल शिष्य-सम विनय भाव से, चलिये
पथिक प्रवीण !
रहो मत आत्म-ज्ञान से हीन !

* ॐ *

आत्म-चिन्तन

विषय-निर्देश

आत्मा को चिन्तामणि, कामधेनु, कल्पवृक्ष कहा है, यह बिलकुल सत्य है। जिस प्रकार चिन्तामणि आदि से मनचाही वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं—सब इच्छाएँ पूर्ण हो सकती हैं, ठीक उसी प्रकार आत्मा के द्वारा, आत्मा की शक्ति (आत्म-बल) के द्वारा जो चाहो वही प्राप्त हो सकता है। आत्मा सब कुछ प्राप्त कर सकने के लिये चिन्तामणि के समान ही है। आत्मा का शुद्ध रूप ऐसा ही है। उसकी जानने की शक्ति (ज्ञान) अनन्त है उसकी श्रद्धाशक्ति (दर्शन) अनन्त है, उसकी पुरुषार्थ करने की शक्ति (वीर्य) अनन्त है और उसकी सदा सर्वदा आनन्द में रहने की शक्ति (सुख) अनन्त है। जो ऐसी

महान् शक्तियों की अनन्तता का पुंज है—जिसकी शक्तियों का पार नहीं है, वह जो चाहे वही कर सकती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। आत्मा ही चैतन्य है, जीवन है, स्फूर्ति है, शाश्वतता है, शक्ति है, ज्ञान है, गुण है, आनन्द है, निर्मलता है, जो कुछ ' है ', वह आत्मा ही है, वही परम तत्त्व है, परमात्मा है—अप्पा सो परमप्पा। ऐसी है आत्मा, जो आप-हम में है, जीव मात्र में है। परन्तु·········

परन्तु स्वयं सब कुछ होते हुए भी, चिन्तामणि होते हुए भी यह आत्मा (जीव) संसार में क्यों भटक रही है ? इस दशा को क्यों प्राप्त हुई है ? नित सुख के लिये प्रयत्न करते हुए भी सुखी क्यों नहीं होती ? अनेक प्रकार के दुःख, कष्ट, रोग, शोक, भय, चिन्ता, व्यथा और अभाव से वह क्यों घिरी रहती है ? उसकी ऐसी दशा क्यों है ?

हम सब ने अपने जीवन में कभी न कभी इस सम्बन्ध में विचार करने का प्रयत्न किया है।

आत्मा की यह दशा एक फल के समान है, जिसका बीज अवश्य ही होना चाहिये। कारण

के बिना कोई कार्य नहीं होता, यह सर्वमान्य सिद्धान्त है।

आत्मा की इस दशा के कारण उसके कर्म हैं-यह दशा उसके कर्मों का फल है। जो जैसा कर्म करता है, उसको फल भी वैसा ही मिलता है।

जानते हो, उस दिन अन्धकार क्यों था? क्या आकाश में सूर्य न था? सूर्य था सही, पर वह बादलों से ढ़का हुआ था—बादल उसके प्रकाश और तेज को हम तक पहुँचने में बाधक थे। ठीक यही दशा आत्मा रूपी सूर्य की हो रही है, जिसकी शक्तियों और गुणों को कर्म रूपी बादलों ने ढ़क रक्खा है। आत्मा अपने शुद्ध रूप में तो चिन्तामणि ही है, अनन्त शक्तिमान ही है, परमात्म रूप ही है, परमानन्द से परिपूर्ण ही है; परन्तु कर्मों के बादलों से ढ़की होने के कारण अपने इन स्वाभाविक गुणों को प्रकट नहीं कर पाती; उसे अपनी इस उच्च दशा का ज्ञान तक नहीं रहता। यही कारण है कि वह दीन, हीन और दुःखी अवस्था को प्राप्त होती है। उसकी जो भी, अच्छी—बुरी, सुखी-दुःखी अवस्था है, उसका मूल उसके कर्म ही हैं—यह उसके कर्मों का फल ही है। इन कर्मों को उसने इस भव और

पूर्वभव में किये होते हैं। जैसे उसके कर्म होते हैं, उनके अनुसार ही उसको सुख-दुःख का अनुभव होता है। जैसा बीज होगा, वैसा ही उस-का फल होगा, यह प्रकृति का अटल नियम है।

आत्मा परिणमनशील (परिणामी नित्य) है, अर्थात् यह संसार में सदा क्रिया करती रहती है। उसकी कोई भी क्रिया या तो पूर्वकर्म के फल का भोगना (निर्जरा) होता है या नये कर्म का बांधना होता है क्योंकि आत्मा स्वयं ही अपने कर्मों का कर्ता, विकर्ता और भोक्ता है। किसी भी क्रिया से इन दोनों में से भोग (कर्म-फल की प्राप्ति या निर्जरा) या शुभाशुभ बन्ध में से एक बात तो होगी ही।

पर, संसार में आत्मा अपने पूर्वकर्म के स-म्बन्ध में नहीं जानती कि कब, कौन से उसके कर्म का उदय होकर उसको उसका फल मिलेगा क्योंकि उस पर अज्ञान का आवरण (परदा) पड़ा होता है। इसको न जानने पर भी आत्मा एक कार्य कर सकती है; वह कार्य है, अपने भाव (परिणाम) को शुद्ध और शुभ रखना। ऐसा करने से निम्न लाभ होंगे——

[१] जो कर्म उदय में आये हुए हैं वे आत्मा के भाव शुद्ध और शुभ होने के कारण दुःखरूप नहीं मालुम होंगे और अशुभ कर्म का बन्ध नहीं हो सकेगा।

[२] जो कर्म सत्ता में (उदय नहीं हुए) हैं, वे आत्मा के भाव शुद्ध और शुभ होने के कारण विनाश को प्राप्त होंगे या अशुभ कर्मों में कमी और शुभ कर्मों का वन्ध होगा।

[३] क्रिया करते समय शुद्ध और शुभ भाव रखने से या तो कर्मों का सर्वथा विनाश होगा या शुभ कर्मों का वन्ध होगा जिसका फल भविष्य में सुखकारक मिलेगा।

दूसरे शब्दों में कहें तो शुद्ध भाव रखने से, आत्मा पर से कर्मों का आवरण हटने से उस के गुणों का प्रकाश होगा जिससे जीवन में सुख और शांति प्राप्त होगी।

अपने भावों को शुद्ध और शुभ रखने के लिये आत्मा को अपने स्वरूप का ज्ञान होना चाहिये। परन्तु आत्मा तो अज्ञान के अन्धकार में है, कर्मों के आवरण से ढ़की हुई है। उसका मन, इन्द्रियाँ और शरीर उस को चाहे जिधर मार्ग-कुमार्ग पर

घसीटे ले जारहे हैं, इनका स्वामी होने पर भी उसने अज्ञान और मोह के कारण अपने आप को इनका दास बना रक्खा है।

जब तक आत्मा को अपने आप का सच्चा ज्ञान नहीं हो जाता; वह अपने मन, इन्द्रियाँ और शरीर को अपने अधिकार में नहीं कर सकती। मन के अर्थात् विचारशक्ति के, जो ज्ञान का साधन है, वश में न होने से आत्मा के भाव शुद्ध-शुभ नहीं हो सकते। और जब तक उसके भाव शुद्ध-शुभ नहीं होते, न तो वह सत्कर्मों में पुरुषार्थ ही कर सकता है और न अपने पूर्वकर्मों के फलों को धैर्य, शान्ति और साहस से सहन ही कर सकता है।

मन बड़ा चंचल है। यह तुरन्त इन्द्रियों के अधीन होकर विषयों की ओर दौड़ता है और शरीर को भी वहीं घसीट ले जाता है। मन की क्रिया विचार है। विचार ही कार्य की पहिली अवस्था है। प्रत्येक कार्य की रचना पहिले विचार जगत् में-मन में होती है, बाद में वह कार्य रूप में प्रकट होता है। विचारों के द्वारा आत्मा अपने आपको बाहर प्रकट कर पाती है और बाहर के तत्त्व को भीतर ग्रहण कर लेती है।

अतएव सिद्ध है कि विचारों से जीवन बनता है। विचारों की शक्ति बड़ी प्रबल होती है। जो जैसे विचार करता है, वह वैसा ही बन जाता है; क्यों कि बारबार एक ही प्रकार के विचार करने-भावना रखने से आत्मा के भाव भी वैसे ही हो जाते हैं और उन्हीं के अनुसार क्रिया होने लगती है। भावों को शुद्ध शुभ रखने के लिये मन को वश में रखना चाहिये—अर्थात् हमेशा सद्विचारों को ही मन में स्थान देना चाहिये।

इसके लिये समय समय पर अपने विचारों की गति-विधि की जांच करते रहना चाहिये और अपने अन्तर्जगत् में प्रवेश करके विचारना चाहिये कि "मैं कौन हूँ और क्या कर रहा हूँ"। इस क्रिया का नाम है, 'आत्मचिन्तन'।

आत्म चिन्तन करने से आत्मा को अपनी दशा—बाहरी और भीतरी का ज्ञान होता है, उस को अपनी चिन्तामणि अवस्था-अपने गुणों और शक्तियों का ज्ञान होता है जिससे उस में आत्म-बल जागृत होता है। आत्मबल के द्वारा सत्य ज्ञान हो जाने से, शुद्ध-शुभ भाव धारण करने से वह मनुष्य (आत्मा) सुख, शांति और आनन्द को इस जीवन में भी प्राप्त करता है, उसको अपने

कार्यों में सफलता मिलती है और उसके द्वारा दूसरों का उपकार भी होता है।

आत्मबल के द्वारा मनुष्य में वह सिद्धि और शक्ति आ जाती है कि जिससे उसके लिये असम्भव कार्य सम्भव और दुर्लभ सुलभ होजाता है।

आत्मबल को जागृत करने के लिये निम्न तीन अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं—

(१) आत्म-स्वरूप का ज्ञान—

आत्मा अजर, अमर, शाश्वत, निराकार और निर्मल चेतन तत्त्व है। कर्मों से आवृत होने के कारण इस संसार—चक्र में भटकती है। इसमें अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुख, निहित हैं; इसकी शक्ति अजेय और अपार है। यही अपने सुख-दुःख का कर्ता, विकर्ता और अकेला है। अपने बन्धन और मोक्ष का कारण यह स्वयं ही है। इसी का सहारा ही सच्चा सहारा है। सब स्थितियों में आत्मा के मूलगुण और स्वभाव को कभी न भूल कर, हर दशा में उन्हीं को एक मात्र सत्य समझ कर वैसी ही आत्मानुभूति करनी चाहिये।

(२) दृढ़ श्रद्धा—

श्रद्धा से ही सब कुछ सम्भव है। बिना श्रद्धा के जो कुछ किया जाता है, वह सार्थक नहीं होता। श्रद्धाहीन को अपने कार्य में सफलता नहीं मिलती। संसार में जितने भी महान् कार्य हुए हैं, उनकी जड़ में अखण्ड श्रद्धा ही रही है। जो चमत्कार देखे और सुने जाते हैं, उनका आधार श्रद्धा ही हुआ करती है। सिद्धि का प्रथम सोपान अखण्ड श्रद्धा—दृढ़ विश्वास ही है। अतएव जो कुछ करो, उसमें श्रद्धा अखण्ड श्रद्धा रखो। याद रखो श्रद्धा जितनी अधिक दृढ़ होगी, उतनी ही शीघ्र और अधिक कार्य-सिद्धि होगी।

(३) एकाग्रता—

अपने मन की वृत्ति को एक ही विषय पर लगा देना एकाग्रता है। एकाग्रता से कार्य की शीघ्र सिद्धि होती है। कलाकार अपने आदर्श पर मन एकाग्र करके ही जो उसके मन में होता है, वैसी ही कृति तैयार कर पाता है। एकाग्रता के बिना कोई कार्य योग्य रीति से नहीं हो सकता। एकाग्रता के बिना ध्यान नहीं लग सकता। एकाग्रता से ही आत्मा की शक्तियाँ जागृत हो

सकती हैं। आत्म-चिन्तन का प्रभाव आत्मा पर तब ही हो सकेगा, जब मन एकाग्र होगा। एकाग्रता के बिना आत्म-चिन्तन नहीं हो सकता। एकाग्रता ध्यान के द्वारा बढ़ती है। जितनी अधिक एकाग्रता होगी, उतनी ही जल्दी सिद्धि होगी। मन की वृत्तियों को एकाग्र करके आत्माभिमुख करो, उनको आत्म-चिन्तन में लीन करदो।

इन तीनों के मिलने पर आत्म चिन्तन सफल और सार्थक हो जाता है। फिर तो साधक अपने सुख और शांति के लिये, अपनी आंकाक्षाओं की पूर्ति के लिये बाहरी साधनों पर अवलम्बित नहीं रहता, वे तो उसके लिये साधारण ही रह जाते हैं; क्योंकि उसको तो सबके मूल आत्मतत्त्व का ज्ञान हो जाता है। वह अनुभव करने लगता है कि आत्मा चिन्तामणि उस के पास है जिसके द्वारा वह जीवन की प्रत्येक दशा में—क्या सुख और क्या दुःख में आनन्दमय रह सकता है। चाहे जैसे दुःख और विपत्ति के समय भी शांति और धैर्य उसका साथ नहीं छोड़ते; अपनी सब परिस्थितियों में वह शान्त, स्थिर और आनन्दी रहता है; सफलता सदा उसके सामने हाथ बांध कर खड़ी रहती है; सुख और शांति तो मानो

उसी के हो जाते हैं: मन में सदा सन्तोष, जीवन में आनन्द और कार्य में सिद्धि उसके स्वाभाविक अंग बन जाते हैं।

आत्म-चिन्तन के अनेक साधन हैं, जिनमें से मुख्य ये हैं—ध्यान, मन्त्रजप, ध्वनि-उच्चार, अध्यात्म-पाठ, सामायिक-प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, सत्संग और भावना (आत्म-सूचना)।

आत्मचिन्तन का कार्यक्रम पुस्तक के अन्त में दिया गया है। साधक अपनी सुविधा के अनुसार भी क्रम रख सकते हैं।

ध्यान ।
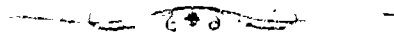
समस्त बाहरी बातों को भुला कर, अपने चित्त को एक ही विषय पर एकाग्र करके उसी का बिचार करते रहना 'ध्यान' है। ध्यान करने की विधि यह है—

किसी एकान्त-शान्त स्थान पर सुखासन से (बन सके तो पद्मासन से) पालथी लगा कर बैठ जाओ। कमर और पीठ को सीधा रखो, सिर बिलकुल सीधा-सामने रहे। अपने हाथों को गोद में बायां हाथ नीचे और दाहिना हाथ उसके ऊपर अंजलि के समान रख लो, अथवा हाथों को दोनों घुटनियों पर रखलो। दृष्टि को नाक के अग्र भाग पर जमा दो। शरीर को तानों मत, बल्कि उसको एकदम ढ़ीला, शिथिल और बेभान करदो। शरीर की जरा भी सुध नहीं रहना चाहिये। मच्छर-डांस

काटे, खुजली चले, पर बिना डिगे, ध्यान में लगे रहो। मन को उसका भान तक मत होने दो—ध्यान में बिलकुल तल्लीन हो जाओ।

अब, अपने मन को लो। अपने समस्त संकल्प विकल्प, बाहरी विचारों को त्याग दो—मन को बिलकुल खाली कर दो। बाहर के विचारों के लिये अपने मन के द्वार बन्द करलो। अब मन में 'शान्ति' का ध्यान करो। मन में 'ॐ शान्तिः' बोलते हुए भान करो कि मेरा मन और शरीर एकदम शान्त हो गये हैं। धीरे धीरे मन में अपने आप कहो कि, मैं शान्त हूँ, सर्वथा शान्त हूँ। शान्ति मेरे चहुँ ओर व्याप्त है, मैं शान्ति के सागर में डूबा हुआ हूँ। मेरे अंग-अंग, रोम-रोम में शन्ति समा रही है। मेरा मन पूर्ण शान्त होगया है। मैं शान्त, एक दम शान्त हूँ। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। इस प्रकार अपने मन के विचारों को शान्ति पर फैलाओ। शांति का ही विचार और अनुभव करते रहो, उसी पर मन को जमाये रहो। इस अवस्था में बीच में दूसरे बाहर के विचार आ घेरेंगे, शांति के विचारों से टकरावेंगे और मन इधर-उधर भटकने लगेगा। पर तुम इसकी परवाह न करते हुए अपने प्रयत्न में दृढ़ रहो। शांति

पर अपने विचारों को जमाये रहो। ध्यान, मन का व्यायाम है। ध्यान से मन की अपने ध्येय, ध्यान के विषय पर एकाग्रता बढ़ती है और इसका सीधा प्रभाव आत्मा के भावों पर होने लगता है, फलतः जीवन भी उसी प्रकार का बनने लग जाता है।

पहिले पहिले मन की शान्ति और एकाग्रता बढ़ाने के लिये 'शान्ति' का ध्यान लगभग १० मिनिट तक करना चाहिये। मन इस पर एकाग्र रह कर शान्त रहने लगे तो फिर अन्य गुणों का ध्यान करके लाभ उठा सकते हैं। कुछ खास-खास गुण ध्यान के लिये यहां लिखे जाते हैं। ध्यान प्रति दिन नियत समय पर और हो सके तो नियत स्थान पर ही करना चाहिये। इसके लिये सब से अच्छा समय प्रातःकाल (चौथा पहर, ब्राह्म मुहूर्त ३ से ६ तक) है; दूसरा, रात को सोते समय का है। सामायिक के समय भी ध्यान कर सकते हैं। एक गुण का विधि पूर्वक ध्यान कम से कम एक मास तक करने पर वह जीवन में अपना प्रभाव दिखाने लगता है।

प्रत्येक अवस्था में, किसी भी प्रकार से आत्म-चिंतन करने के पहिले पांच मिनिट तक 'शान्ति'

का ध्यान करके, अपने मन को शान्त, स्थिर और एकाग्र कर लेना चाहिये।

ध्यान के विषय *

अहिंसा (प्रेम)—

मैं आत्मा हूँ। अहिंसा आत्मा का धर्म है। मैं सब जीवों पर समभाव रखता हूँ। मैं मन, वचन और काया से किसी को कष्ट नहीं पहुँचाऊँगा। सब जीवों को सुख शांति देने में, उनका हित करने में तत्पर रहूँगा। मैं सब को अपने समान ही समझता हूँ। शत्रु-मित्र सब पर प्रेम भाव रखता हूँ, मैं सर्वत्र प्रेममय हूँ। इसलिये किसी को मुझ से कोई भय नहीं है और न मुझे ही किसी का भय है। मैं किसी में द्वेष, ईर्ष्या और आक्रोश नहीं करता। मैं अहिंसा से परिपूर्ण हूँ—मेरा प्रत्येक कार्य अहिंसा मय रहता है। मैं सब पर दया रखता हूँ। मैं सर्वत्र अहिंसा मय हूँ।

* यथाशक्ति व्रत तो लेना ही चाहिये पर तो भी अपने ध्येय तक पहुंचने की आत्मक्षमता प्राप्त करने में सहायक होने के कारण ध्यान करना आवश्यक है।

सत्य—

मैं आत्मा हूँ। सत्य आत्मा का धर्म है। सत्य का पालन मैं मन, वचन और काया से करूँगा। चाहे जैसे भय और लोभ दिखाने पर भी मैं सत्य के मार्ग से नहीं डिगूँगा। सत्य के लिये मैं प्राण तक दे दूँगा। सत्य ही मेरा इष्ट है। सत्य-जीवन यथार्थ जीवन ही मेरा लक्ष्य है। मैं सत्यव्रतधारी हूँ-मेरा व्यवहार सर्वत्र सत्य से परिपूर्ण रहता है।

अस्तेय (अचौर्य)—

मैं आत्मा हूँ। मैं सब प्रकार से परिपूर्ण हूँ। मैं दूसरे की वस्तु उससे बिना पूछे कदापि न न लूँगा। मैं चोरी करने का महापाप कभी नहीं करूँगा। वस्तु पर उसके मालिक का अधिकार ही सच्चा अधिकार है। मैं मन, वचन और काया से किसी की वस्तु का अपहर नहीं करूँगा। मैं सम्पूर्ण—सर्वथा परिपूर्ण हूँ, मुझ में चोरी करने के भाव तक कदापि नहीं आ सकते। मुझे किसी वस्तु का अभाव नहीं है।

ब्रह्मचर्य—

मैं आत्मा हूँ। ब्रह्मचर्य आत्मा का धर्म है।

आत्मा की उन्नति का प्रधान साधन ब्रह्मचर्य-पालन ही है। मैं मन, वचन और काया से ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा। कोई भी अपवित्र विचार मेरे मन में नहीं आ सकते। मेरी इन्द्रियां मेरे वश में हैं। जो आकर्षक है और सुन्दर दिखाई देता है, वह पौद्गलिक है, नाशवान है, उस पर मेरी आत्मा कदापि मोहित नहीं हो सकती—ऐसे घोर पाप का विचार तक नहीं कर सकती। ब्रह्मचर्य ही जीवन है। मैथुन में कोई सत्य नहीं है। अब मेरे विकार शान्त होगये हैं। मै ब्रह्मचर्य व्रत पर दृढ़ हूँ—परमपवित्र हूँ—शुद्ध हूँ। आत्मा हूँ।

अपरिग्रह—

मैं आत्मा हूँ। आत्मा के गुण ही अपने हैं, शेष सब मोह है, इसलिये त्याज्य है। मैं सर्वथा परिपूर्ण हूँ। जो कर्म के अनुसार प्राप्त होने वाला है, वही मुझे मिलेगा। मैं भविष्य के लिये मोह में पड़कर संग्रह नहीं करूँगा। मैं अपनी जरूरतों को कम करके थोड़े में अपना निर्वाह करूँगा। अपने परिग्रह को मैं परमार्थ के लिये समाज को अर्पण कर दूँगा। परिग्रह के लिये मैं अपनी शक्ति और समय को नष्ट नहीं करूँगा। अब मैं परिग्रह बुद्धि से मुक्त होगया हूँ—मैं तो सर्वथा सम्पूर्ण हूँ।

क्षमा (अक्रोध)—

मैं आत्मा हूँ। मैं परम शान्त हूँ। मैं अनन्त क्षमा से परिपूर्ण हूँ। मुझे जरा भी क्रोध नहीं है। जो मुझ से वैर-विरोध रखते हैं, मेरी निन्दा करते हैं। मैं उन सबको मन, वचन और काया से क्षमा करता हूँ। जो मेरी हानि करते हैं, उनसे मैं बदला लेने की शक्ति होते हुए भी बदला न लेकर उनको क्षमा करता हूँ। मैं ने किसी का अपराध किया हो, कटुवचन कहे हों तो मैं उनसे हृदय से क्षमा मांगता हूँ। मैं किसी की हानि, अपमान, निन्दा और विरोध नहीं करूँगा, कोई गाली देगा तो भी उसको क्षमा कर दूँगा। मैं क्रोध, वैर-विरोध, ईर्ष्या, कपट, बुराई, कटु-वचन, निन्दा आदि का बदला क्षमा भाव से ही दूँगा। मैं सबको क्षमा कर रहा हूँ और वे मुझे क्षमा कर रहे हैं।

मौन—

मैं आत्मा हूँ। मैं व्यर्थ ही बोलकर अपनी शक्ति को नष्ट नहीं करूँगा। निरर्थक बातें, गप्प, निन्दा आदि में न पड़ूँगा। मौन में ही सच्ची शक्ति है। मैं जब बोलूँगा तो उद्देश्य से ही बोलूँगा—

सत्य, हितकर और प्रिय वचन ही बोलूँगा। मैंने निरर्थक बातों से अपनी जीभ को मोड़ लिया है। मैं जानता हूँ कि सच्चा मौन जीभ को ही नहीं बल्कि मन को भी शांत रखना है। मेरी वाक्-शक्ति आत्मचिन्तन में लगी रहती है, मैं मौन धारण करके अपनी आत्मा में संयमित रहता हूँ। मौन से आत्म बल की वृद्धि होती है।

आत्म संयम--

मैं आत्मा हूं। मैं सर्वदा आत्म-भाव में ही लीन रहता हूं। संसार की कोई घटना या विचार मुझ पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। मैं आत्म तत्व में पूर्णता से स्थित रहता हूं। मैं सब स्थितियों में परम प्रसन्न रहता हूं। चाहे जैसे दुःख, विपत्ति, अशान्ति और विकार मुझे अपने आत्मानन्द से चलायमान नहीं कर सकते। मुझे सर्वत्र आनन्द मालुम होता है। मैंने सब प्रकार के लोभ, भय, काम, क्रोध, मोह, मद आदि विकारों को जीत लिया है। आत्म संयम से मैं सर्वत्र विजयी होता हूं।

निर्भयता—

मैं आत्मा हूं। मैं परम निर्भय हूं। आत्मा की

शक्ति अनन्त है, सर्व विजयी है। मुझे किसी प्रकार का भय नहीं हो सकता। मैं प्रत्येक दशा में सर्वथा निर्भय रहता हूं। किसी भी मनुष्य या घटना से मैं जरा भी नहीं डरता। मैं आत्मज्ञानी हूं। मैं हमेशा आत्मा के गुणों का ही अनुभव करता हूं, इसलिये कोई बात मुझे भयभीत नहीं कर सकती। मैं परम निर्भय हूं; परम आनन्द मय हूं।

निर्मोह—

मैं आत्मा हूं। संसार में कोई किसी का नहीं है। आत्मा के गुणों के सिवाय कुछ भी मेरा नहीं है, फिर क्यों मैं संसार के पदार्थों में मोह रख कर अपनी आत्मा को पराधीन बनाऊं? मैं ने संसार के पदार्थों से मोह हटा लिया है। जहाँ मोह है, वहां दुःख है। निर्मोह ही परम सुख है। मैं सर्वदा आत्म-भाव में ही लीन रहता हूं। मुझे किसी व्यक्ति या वस्तु का मोह नहीं है, इसलिये इनका संयोग-वियोग मुझे दुःखी नहीं कर सकता। मै निर्मोही हूं।

धैर्य—

मैं आत्मा हूं। मैं धैर्यवान् और सन्तोषी हूं।

में सब अवस्थाओं में—क्या सुख और क्या दुःख में समभाव रखता हूं और उनको धीरज से सहन करता हूं। मुझ में अपार धैर्य है, कठिन से कठिन विपत्ति के समय भी मैं हताश और अधीर नहीं होता क्योंकि जानता हूं कि सन्तोष और धीरज का फल मीठा होता है। मेरे कार्य में कभी अशान्ति और जल्दी नहीं रहती। सन्तोष ही परम धन है। मेरा आलम्ब धैर्य ही है, मैं धैर्यवान् हूं।

पवित्रता—

मैं आत्मा हूं। मैं परम पवित्र हूं। मैं प्रत्येक अवस्था में सर्वथा पवित्र रहता हूं। पवित्रता ही मेरे जीवन का आधार है। लोभ और विकार मुझे पवित्रता से कदापि डिगा नहीं सकते। मैं पवित्रता पर दृढ़ हूं। मैं मन, वचन और काया से सदा पवित्र रहूंगा। मैं आत्मा हूं, पवित्रता आत्मधर्म है। अब मुझे आत्मज्ञान होगया है, इसलिये पवित्रता ही मेरी प्रत्येक क्रिया में रहेगी, मैं परम पवित्र हूं।

मन्त्र-जप ।

उसी आसन से बैठे हुए ध्यान के द्वारा मन को शान्त, स्थिर और एकाग्र करके मन्त्र-जप करना चाहिये। मन्त्रों में अमोघ शक्ति है। इनके द्वारा ही हमारे पूर्वजों ने अनेक चमत्कार पूर्ण कार्य कर दिखाये थे, जो आज हमारी कल्पना तक में नहीं आते मन्त्र के अर्थ को ध्यान में रखकर, उस पर दृढ़ श्रद्धा और एकाग्रता करके नियम पूर्वक मन्त्र का जप किया जाय तो निश्चय ही सिद्धि प्राप्त हो।

अनेक मन्त्र हैं, पर जो अपने को इष्ट हो, जिस पर अपनी श्रद्धा हो, उसी का जप करना चाहिये। बोलकर जप करने की अपेक्षा मौन जप में अधिक शक्ति होती है। भयङ्कर चिन्ता, क्रोध आदि विकारों के समय बोलकर जप करने से तुरन्त शांति प्राप्त हो सकती है।

नीचे जप के लिये प्रसिद्ध मन्त्र लिखे जाते हैं; इनमें से किसी एक का जप करना चाहिये।

१. पंच परमेष्टि श्री नवकार महामन्त्र—

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोएसव्वसाहूणं।

अर्थ—अरिहंत (जो राग, द्वेष को जीतकर जीवन्मुक्त होगये हैं) को नमस्कार हो। सिद्ध (जिन्होंने कर्मों का कृत्स्न क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लिया है) को नमस्कार हो। आचार्य- धर्मोपदेष्टा, चतुर्विध संघ के नायक साधु को नमस्कार हो। उपाध्याय–धर्म-ज्ञान शिक्षक साधु को नमस्कार हो और सब साधुओं को नमस्कार हो।

यह अत्यन्त प्राचीन महामन्त्र है। असंख्य महात्मा और जन साधारण इसको जपते आये हैं। इसमें देव (अर्हंत और सिद्ध) और गुरु आचार्य, उपाध्याय और साधु को नमस्कार किया गया है क्योंकि संसारी आत्मा के लिये ये आदर्श हैं, इनके ही मार्ग पर चलने में आत्मा का कल्याण

है। इनका आदर्श सामने रखकर ही आत्मा अपनी उन्नति कर सकती है। देव-अरिहन्त और सिद्ध, वे आत्माएँ हैं जिन्होंने अपनी आत्मा की सम्पूर्ण उन्नति कर हमें मार्ग दिखा दिया है कि आत्मा इस श्रेष्ठतम चरम पद को प्राप्त कर सकती है और गुरु (साधु) वे आत्माएँ हैं, जो अपने उच्च आचरण और सदुपदेश से हमको आत्मा के गुणों का ज्ञान कराते हैं। इनका ध्यान करने से-इनके चारित्र को आदर्श मानकर अनुकरण करने से आत्मा में अपने गुणों की जागृति होती है, वह अपने को शुद्ध रूप में प्रकट करने का प्रयत्न करती है।

नवकार महामन्त्र महा चमत्कार युक्त है। इसके चमत्कार की कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। दृढ़ श्रद्धा से किये हुये जप से जो प्राप्त हो सकता है, उसका ख्याल तक संसार स्वप्न में भी नहीं कर सकता।

२. ॐ—यह नवकार महामंत्र का संक्षिप्त नाम है। इस एक शब्द में पांचों पद आ जाते हैं। अर्हंत और अशरीरी (सिद्धि) का प्रथम अक्षर

अ, आचार्य का आ, उपाध्याय का उ और मुनि (साधु) का म् मिलकर ॐ बना है। अ+अ+आ+उ+म् की संधि होकर ॐ हुआ।

३. **ॐ शांति**—इसका जप करने से पांचों पदों के साथ ही शांति का भी बोध होता जाता है। यह परम शांति का देने वाला है। जब जीवन में चिन्ता, घबराहट, रोग की तीव्रता, भय आदि का जोर हो तो इसका जप करने से शांति प्राप्त होती है।

४. **सोऽहं**—इसका मतलब 'वह मैं हूं' होता है। मैं अर्थात् आत्मा ही वह अर्थात् परमात्मा है- आत्मा का शुद्ध रूप ही परमात्मा है। इसका जप करने से आत्मा अपने परमात्म गुणों में-शुद्ध स्वरूप में रमण करने लगती है, उनमें तल्लीन हो जाती है। आत्मा अपनी संसार अवस्था को भूल कर अपने अन्तरतम-परमात्म-रूप से एक हो जाती है। इसका सतत चिन्तन और अनुभव करने से जीवन व्यवहार में भी यही भाव काम करने लग जाता है। इस मन्त्र के जप से आत्म-दीनता-मैं कुछ नहीं हूं, क्या करूँ आदि दीन भाव

दूर होकर आत्मा को अपनी परमात्म शक्ति का ज्ञान हो जाता है; आत्मा में बल, जीवन और कार्य-क्षमता प्रकट होती है।

मन्त्र का जप करते समय उसके अर्थ (गुणों) का ध्यान रखना चाहिये। इसके बिना किया हुआ जप विशेष लाभ दायक नहीं होता।

माला का साधन—मन्त्र पर मन को एकाग्र रखने के लिये माला के दाने पर बोला जाता है। माला से जप करने का बड़ा प्रचार है। माला की संख्या नियत करके प्रतिदिन नियम पूर्वक ही माला फेरी जावे। दाने पर मंत्र को बोलते समय चित्त को उस पर एकाग्र रखना चाहिये—मंत्र के अर्थ का पूरा ध्यान रहे कहीं ऐसा न हो कि दाने के साथ मन्त्र बोलते हुए भी मन बाहर ही भटकता रहे।

आनुपूर्वी—मन्त्र पर मन को एकाग्र रखने के लिये माला के समान ही आनुपूर्वी भी एक अति प्रचलित और प्रसिद्ध साधन है। यह माला से किसी कदर अधिक सार्थक होता है क्योंकि इसमें पञ्चपरमेष्टि के पांच पदों को कोष्टक में लोम

विलोम रहने से उसी प्रकार बोलते हुए जपना पड़ता है। इससे मन को उसका ध्यान रखना पड़ता है और वह एकाग्र रहता है। इसी कारण आनुपूर्वी द्वारा जप करने का बड़ा प्रचार है।

आनुपूर्वी की जप-विधि।

जहाँ १ है वहाँ नमो अरिहंताणं बोलना।
जहाँ २ है वहाँ नमो सिद्धाणं बोलना।
जहाँ ३ है वहाँ नमो आयरियाणं बोलना।
जहाँ ४ है वहाँ नमो उवज्झायाणं बोलना।
जहाँ ५ है वहाँ नमो लोएसव्वसाहूणं बोलना।

१

१	२	३	४	५
२	१	३	४	५
१	३	२	४	५
३	१	२	४	५
२	३	१	४	५
३	२	१	४	५

२

१	२	४	३	५
२	१	४	३	५
१	४	२	३	५
४	१	२	३	५
२	४	१	३	५
४	२	१	३	५

३

१	३	४	२	५
३	१	४	२	५
१	४	३	२	५
४	१	३	२	५
३	४	१	२	५
४	३	१	२	५

४

२	३	४	१	५
३	२	४	१	५
२	४	३	१	५
४	२	३	१	५
३	४	२	१	५
४	३	२	१	५

५

१	२	३	५	४
२	१	३	५	४
१	३	२	५	४
३	१	२	५	४
२	३	१	५	४
३	२	१	५	४

६

१	२	५	३	४
२	१	५	३	४
१	५	२	३	४
५	१	२	३	४
२	५	१	३	४
५	२	१	३	४

७

१	३	५	२	४
३	१	५	२	४
१	५	३	२	४
५	१	३	२	४
३	५	१	२	४
५	३	१	२	४

८

२	३	५	१	४
३	२	५	१	४
२	५	३	१	४
५	२	३	१	४
३	५	२	१	४
५	३	२	१	४

९

१	२	४	५	३
२	१	४	५	३
१	४	२	५	३
४	१	२	५	३
२	४	१	५	३
४	२	१	५	३

१०

१	२	५	४	३
२	१	५	४	३
१	५	२	४	३
५	१	२	४	३
२	५	१	४	३
५	२	१	४	३

११

१	४	५	२	३
४	१	५	२	३
१	५	४	२	३
५	१	४	२	३
४	५	१	२	३
५	४	१	२	३

१२

२	४	५	१	३
४	२	५	१	३
२	५	४	१	३
५	२	४	१	३
४	५	२	१	३
५	४	२	१	३

१३

१	३	४	५	२
३	१	४	५	२
१	४	३	५	२
४	१	३	५	२
३	४	१	५	२
४	३	१	५	२

१४

१	३	५	४	२
३	१	५	४	२
१	५	३	४	२
५	१	३	४	२
३	५	१	४	२
५	३	१	४	२

१५

१	४	५	३	२
४	१	५	३	२
१	५	४	३	२
५	१	४	३	२
४	५	१	३	२
५	४	१	३	२

१६

३	४	५	१	२
४	३	५	१	२
३	५	४	१	२
५	३	४	१	२
४	५	३	१	२
५	४	३	१	२

१७

२	३	४	५	१
३	२	४	५	१
२	४	३	५	१
४	२	३	५	१
३	४	२	५	१
४	३	२	५	१

१८

२	३	५	४	१
३	२	५	४	१
२	५	३	४	१
५	२	३	४	१
३	५	२	४	१
५	३	२	४	१

१९

२	४	५	३	१
४	२	५	३	१
२	५	४	३	१
५	२	४	३	१
४	५	२	३	१
५	४	२	३	१

२०

३	४	५	२	१
४	३	५	२	१
३	५	४	२	१
५	३	४	२	१
४	५	३	२	१
५	४	३	२	१

ध्वनि उच्चार।

आत्म-गुण-वर्धक शब्द–ध्वनि का मधुर-स्वर से उच्चारण करने से अन्तर और बाह्य वातावरण एकदम आनन्दय बन जाता है। इससे चिंता, घबराहट, ग्लानि, रोष, और अशान्ति मिट कर शान्ति, आनन्द और उल्लास छा जाता है। ध्वनि का उच्चार मधुर कंठ से, भीतर से गुंजार करते हुए धीरे धीरे करना चाहिये, उसमें इतने तन्मय हो जाना चाहिये कि बाहरी जगत् का ध्यान तक न रहे।

यहां कुछ ध्वनियां दी जाती हैं, इनमें से अपनी आवश्यकता और रुचि के अनुसार कोई भी बोल सकते हैं। प्रत्येक ध्वनि की एक पूर्ति यहां दी गई है। एक वार बोलकर फिर उसे बोलना चाहिये। इस प्रकार जब तक इच्छा हो, चार छः मिनिट तक बोलते रहना चाहिये।

(१) ॐ ! ॐ !! ॐ !!!, ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

(२) ॐ अर्हम् ! ॐ अर्हम् !! ॐ अर्हम् !!!
ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

'ॐ अर्हम्' अरिहंत परमात्म सूचक है।

(३) ॐ आनन्दम् ! ॐ आनन्दम् !!
ॐ आनन्दम् !!!
ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

यह आनन्द वर्धक है।

(४) ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः !
ॐ शान्ति !!!
ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

यह शान्ति वर्धक है।

(५) ॐ आरोग्यम् ! ॐ आरोग्यम् !!
ॐ आरोग्यम् !!!
ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

यह आरोग्य-वर्धक है। रोग की अवस्था में इससे शान्ति प्राप्त होती है। रोगी के सिर पर हाथ रख कर इसे उच्चारण करना चाहिये, इससे रोगी की घबराहट और रोग की तीव्रता शान्त होती है।

अध्यात्म पाठ ।

सूत्र-सूक्ति-शास्त्र गाथा

[जयणा से पढें]

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सयामणो ॥ १ ॥
अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नन्दणं वणं ॥ २ ॥

धर्म सर्वोत्तम मंगल है । अहिंसा, संयम और तप धर्म हैं । जिनका मन सदा धर्म में लगा रहता है, उनको देव भी नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥

यह आत्मा खुद ही नरक की वैतरणी नदी और कूट शाल्मली वृक्ष के समान दुःखदायी है; और इच्छित वस्तु देने वाली कामधेनु और नन्दनवन के समान सुखदायी है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥ ३ ॥
वरं मे अप्पा दन्तो, संजमेण तवेण य ।
माहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं वहेहिं य ॥ ४ ॥
अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए ॥ ५ ॥
अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पादन्तो सुही होई, अस्सिं लोए परत्थ य ॥६॥

यह आत्मा ही अपने सुख-दुख का कर्ता और विकर्ता-भोक्ता है; और यह आत्मा सुमार्ग पर रहने पर अपना मित्र और कुमार्ग पर रहने पर अपना ही शत्रु होता है ॥३

बाहर के बन्धन या वध से दमन किये जाने की अपेक्षा संयम और तप से अपना आत्मदमन करना उत्तम है ॥ ४ ॥

अपने साथ ही युद्ध कर; बाहर युद्ध करने से क्या होता है ? आत्मा को आत्मा से ही जीतने से सुख प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

अपनी आत्मा को ही दमन करना चाहिये; आत्मा दुर्दमनीय है । आत्मा का दमन करने वाला ही इस लोक और परलोक में सुखी होता है ॥ ६ ॥

पंचिंदियाणि कोहं माणं मायं तहेव लोहं य ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिए जियं ॥७॥
जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिए ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमोजओ ॥८ ॥
जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए ।
जयं भुंजन्तो भासन्तो, पावकम्मं न बंधइ ॥ ९ ॥
लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।
समो निंदापसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥ १० ॥

पांचों इन्द्रियों के विषय, क्रोध, मान, माया, लोभ और आत्मा दुर्जय हैं । आत्मा को जीत लेने पर इन सब को जीत लिया होता है ॥ ७ ॥

दस लाख योद्धाओं को दुर्जय संग्राम में जो जीत लेता है, उस से भी अधिक विजयी वह है जो अपने आप को जीत लेता है ॥ ८ ॥

सावधानी [यत्न] से चले, खड़ा रहे, बैठे, सोवे, भोजन करे और बोले तो पापकर्म का बन्ध नहीं होता ॥९

लाभ में या हानि में, सुख में या दुःख में, जीवित रहने या मरने में, निन्दा या प्रशंसा किये जाने पर और मान या अपमान किए जाने पर रहे, समभाव रखे ।

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसे, वेरं मज्झं न केणई ॥ ११॥

परमानन्द स्तोत्र ।

अनन्तसुखसम्पन्नं, ज्ञानामृतपयोधरम्।
अनन्तवीर्यसम्पन्नं, दर्शनं परमात्मनः ॥ १ ॥
परमानन्दसंयुक्तं, निर्विकारं निरामयं।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम् ।२॥
आकार रहित शुद्धं, स्वस्वरूपे व्यवस्थितम्।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरंजनम् ॥ ३ ॥

मैं सब जीवों को क्षमा करता हूं, सब जीव मुझे क्षमा करते हैं, मेरी सब जीवों के साथ मित्रता है, किसी के साथ मुझे वैर नहीं है ॥ ११ ॥

अनन्त सुख विशिष्ट, ज्ञानरूपी अमृत से भरे हुए समुद्र के समान और अनन्त बल युक्त परमात्मा का स्वरूप समझना चाहिये ॥ १ ॥

परमानन्द युक्त, रागादि विकारों से रहित, रोगों से मुक्त और अपने शरीर में ही विराजमान परमात्मा का ध्यान हीन मनुष्य नहीं देख सकते ॥ २ ॥

जो आकार रहित, शुद्ध, अपने स्वरूप में ही स्थिति, सिद्ध के आठ गुणों से युक्त और कर्ममल से रहित है; ॥ ३

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुंगवः ।
स एव परमं तत्त्वं; स एव परमो गुरुः ॥ ४ ॥
स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः ।
स एव परमं ध्यानम्, स एव परमात्मकम् ॥ ५ ॥
स एव सर्वकल्याणं, स एव सुख भाजनम् ।
स एव शुद्धचिद्रूपं, स एव परमं शिवम् ॥ ६ ॥
स एव परमानन्दः, स एव सुख दायकः ।
स एव घनचैतन्यं, स एव गुणसागरः ॥ ७ ॥
अनन्त ब्रह्मणोरूपं, निजदेहे व्यवस्थितं ।
ज्ञान हीना न पश्यन्ति, जात्यंधा इव भास्करम् ॥८

वही परमब्रह्म, जिन, परमतत्त्व और परम गुरु है ॥ ४

वही परम ज्योति, परम ध्यान और परमात्मा है ॥५॥

वही सब कल्याण है, परम सुख का पात्र, शुद्ध चिद्रूप और परम शिव है ॥ ६ ॥

वही परम आनन्द, सुख दाता, परम चैतन्य और गुणों का समुद्र है ॥ ७ ॥

अनन्तब्रह्म रूप परमात्मा अपने शरीर में ही रहा हुआ है, जिस प्रकार जन्मान्ध सूर्य को नहीं देख सकते, वैसे ही ज्ञान हीन उसको नहीं देख सकते ॥ ८ ॥

नलिन्यां च यथानीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति सर्वदा ॥ ९ ॥
काष्ठमध्ये यथावह्निः, शक्तिरूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पण्डितः ॥१०
तत्समं तु निजात्मानं, यो जानाति स पण्डितः।
सहजानन्दचैतन्यं, प्रकाशयति महियसे ॥ ११ ॥
सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम् ॥ १२ ॥

कमल के पत्ते पर पानी की बून्द के समान यह निर्मल आत्मा शरीर के भीतर रहकर भी स्वभाव से भिन्न रहती है ॥ ९ ॥

जैसे लकड़ी में आग शक्ति रूप से रहती है, वैसे ही शरीर के भीतर आत्मा को जो शक्ति रूप मे जानता है, वही पंडित है ॥ १० ॥

जो अपनी आत्मा को इस प्रकार जानता है, वह उस के स्वाभाविक आनन्द को विशेष प्रकार से प्रकट करता है ॥ ११ ॥

जो अपनी आत्मा को सदा आनन्दमय जानता है, वही पंडित है। और वही आत्मा को परम आनन्द का कारण समझ कर उसको सेवा करना जानता है ॥१२ ॥

तद्ध्यानं क्रियते भव्यै, येन कर्म विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्चमत्कारलक्षणम् ॥ १३ ॥
[मूल से उद्धृत]

समभाव पाठ

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणीषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ॥ १
शरीरतः कर्तुमनन्तशक्तिं,
विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम्।
जिनेन्द्र कोषादिव खङ्गयष्टिं,
तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः॥ २

भव्य जीवों को इसीका ध्यान करना चाहिये जिससे कर्म नष्ट होने पर उसी समय चैतन्य चमत्कार रूप शुद्ध तत्त्व परमात्मा के दर्शन होते हैं ॥ १३ ॥

हे देव ! मैं जीव मात्र से मित्रता, गुणीजनों के साथ प्रेम, दुःखी जीवों पर दया भाव और दुर्जन-दुष्टों पर माध्यस्थ भाव रखना चाहता हूं ॥ १ ॥

हे जिनेन्द्र ! आपकी कृपा से मुझ में ऐसी शक्ति पैदा हो कि जैसे म्यान से तलवार अलग की जाता हैं, वैसे ही मेरी इस अनन्त शक्तिशाली निर्दोष शुद्ध आत्मा को शरीर से अलग कर दूं ॥ २ ॥

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे,
योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः,
समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥३॥
यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः,
समस्तसंसारविकारबाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥४॥

प्रभो! समस्त ममत्व बुद्धि को त्याग कर मेरा मन दुःख में, सुख में, शत्रुओं या बन्धुओं के मिलने और बिछुड़ने में, इच्छित वस्तु के वियोग में और अनिच्छित के संयोग में घरमें और वन में सदा समभाव से रहे ॥३॥

जो अनन्त दर्शन ज्ञान और सुखरूप स्वभाव वाला है, सम्पूर्ण संसार के विकार पैदा करने वाले परिणामों से रहित है, जो उच्च ध्यान से प्राप्त होने योग्य है और जिस को परमात्मा कहते हैं, वह देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान हो अर्थात् मैं परमात्म स्वरूप बनूं ॥ ४ ॥

निषूदते यो भवदुःखजालं,
निरीक्षते यो जगदन्तरालं
यो अन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः,
स देवदेवोहृदये ममास्ताम् ॥५॥

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः,
सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः ।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥६॥

जो संसार के दुःखों को नष्ट करता है, जो जगत के सब पदार्थों को देखता है, जो अन्तरंग में प्राप्त है और ध्यानियों द्वारा देखने योग्य है, वह देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान हो ॥ ५ ॥

जो तीनों जगत् के पदार्थों को देखने वाले ज्ञान की अपेक्षा समस्त लोक के पदार्थों में व्यापक है, सिद्ध है, बुद्ध है तथा कर्मबन्धों का जिसने नाश कर दिया है और जिस का ध्यान करने से सब विकार नष्ट हो जाते हैं, वह देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान हो ॥ ६ ॥

न स्पृश्यते कर्मकलंकदोषैः,
यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः।
निरञ्जनं नित्यमनेकमेकं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥

विभासते यत्र मरीचिमाली,
न विद्यमाने भुवनावभासी।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥८॥

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं,
विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ ९॥

जैसे अन्धकार का समूह सूर्य-किरणों पर कुछ प्रभाव नहीं दिखा सकता, वैसे ही जिसको कर्म-कलंक के दोष छू तक नहीं सकते—जो निष्पाप है, वस्तुस्थिति की अपेक्षा नित्य है और गुण पर्याय की अपेक्षा अनेक है, द्रव्य की अपेक्षा एक है; मैं उस आप्त देव की शरण लेता हूं ॥ ७ ॥

मैं उस आप्त देव की शरण लेता हूं जो अपनी आत्मा में स्थित ज्ञान स्वरूप ऐसा प्रकाश है, जिसके समान सूर्य भी संसार को प्रकाशित नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

जिसके ज्ञान में संसार के पदार्थ अलग २ स्पष्ट दिखाई देते हैं, ऐसे शुद्ध कल्याण स्वरूप, शान्त, आदि—अन्त रहित आप्त देव की शरण लेता हूं ॥ ९ ॥

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी,
विधानतो नो फलको विनिर्मितम्।
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः,
सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥ १०॥

न संस्तरो भद्र समाधिसाधनं,
न लोक पूजा न च संघमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं,
विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम् ॥ ११॥

समाधि के लिये पत्थर, घास या पृथ्वी के या लकड़ी की चौकी के आसन को आवश्यकीय नहीं माना गया है। जिस आत्मा ने कषायों को नष्ट कर डाला है, वह निर्मल आत्मा ही विद्वानों द्वारा आसन माना गया है ॥ १० ॥

हे भद्र! समाधि का साधन न तो आसन ही है, न लोक पूजा है और न संघ–सम्मेलन ही है। इसलिये तू बाहरी वासनाओं को छोड़ कर हर प्रकार से अध्यात्म में (अपने शुद्ध स्वरूप में) लीन हो ॥ ११ ॥

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था,
भवामि तेषां न कदाचनाहम् ।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं,
स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै ॥ १२॥

आत्मानमात्मन्यविलोकयमानः
स्त्वं दर्शन ज्ञानमयो विशुद्धः ।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र,
स्थितोपि साधुर्लभते समाधिम् ॥ १३॥

मेरी आत्मा से बाहर के जो भी पदार्थ हैं, वे मेरे नहीं हैं और न मैं ही उनका कभी हूं; ऐसा निश्चय करके हे भद्र ! बाहरी बातों को छोड़ कर मोक्ष प्राप्त करने के लिये अपनी ही आत्मा में स्थिर हो ॥ १२ ॥

अपने को अपने में ही अवलोकन करने वाला तू दर्शन ज्ञानमय और निर्मल है। जहां कोई साधु अपने चित्त को एकाग्र करके ध्यान में स्थिर होता है, वहां वह समाधि को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥ १४ ॥

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो,
न कोपि कस्यापि ददाति किंचन ।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः,
परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम् ॥ १५॥

आत्मा ने पूर्व काल में जो कर्म किये हैं, उनका शुभ अशुभ फल स्वयं वही पाती है। यदि अपने कर्म के बिना दूसरे का दिया हुआ फल प्राप्त होने लगे तो यह स्पष्ट है कि अपनी आत्मा का किया हुआ कर्म व्यर्थ ही हो जाय ॥ १४ ॥

जीव अपने उपार्जित कर्मों का ही फल पाते हैं; अपने उपार्जित कर्मों को छोड़कर कोई भी किसी को कुछ नहीं देता। इस प्रकार एकाग्र चित्त से विचार करते हुए 'दूसरा देता है' ऐसी बुद्धि को त्याग देना उचित है ॥ १५ ॥

संयोगतो दुःखमनेकभेदं,
यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो,
यियासुना निर्वृत्तिमात्मनीनाम् ॥ १६॥
अतिक्रमं यं विमतेर्व्यतिक्रमं,
जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः।
व्यधादनाचारमपि प्रमादतः,
प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥ १७॥
विमुक्तिमार्गे प्रतिकूलवर्तिना,
मया कषायाक्तवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं,
तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥ १८॥

संसार रूपी बन में यह देही जीव बाहर के पदार्थों के सम्बन्ध से अनेक प्रकार के दुःख पाता है। जो इनके सम्बन्ध से पैदा होने वाले दुःखों से बचना चाहता है, वह इनके सम्बन्ध को मन–वचन–काया से छोड़ दे ॥१६॥

हे जिनदेव ! मैं ने दुर्बुद्धि से प्रमादवश अपने उत्तम चरित्र में जो अतिक्रम, व्यतिक्रम अतिचार और अनाचार दोष किये हों तो उनकी शुद्धि के लिये पश्चात्ताप करता हूँ ॥ १७ ॥

मोक्ष मार्ग के विरुद्ध चलने वाले मुझ से कषाय के वश होकर चारित्र की निर्मलता का जो विनाश किया गया हो, वह सब पाप मिथ्या हो ॥ १८ ॥

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा,
विनिर्मलः साधिगमस्वभावः ।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता,
न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥ १६॥

सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं,
संसारकान्तारनिपातहेतुम् ।
विविक्तमात्मनवेक्ष्यमाणो,
निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥ २० ॥

[श्री अमितिगतिसूरि विरचित सामायिक पाठ से साभार उद्धृत]

मेरी आत्मा सदा एक, शाश्वत (नित्य), निर्मल और केवल ज्ञान स्वरूप है; और मेरी आत्मा से बाहर के समस्त पदार्थ अपने कर्मों से ही मुझे प्राप्त हुए हैं, वे नाशवान् हैं, उनकी अवस्था सदा बदलती रहती है ॥ १६॥

संसार रूपी वन में गिराने वाले सब विकल्पों को दूर करके तू अपनी आत्मा को सब से भिन्न जानता हुआ परमात्मातत्त्व में लीन हो ॥ २० ॥

मेरी भावना

जिसने रागद्वेषकामादिक जीते,
सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का,
निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा,
या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह,
चित्त उसी में लीन रहो॥१॥
विषयों की आशा नहीं जिनके,
साम्यभाव धन रखते हैं।
निज-पर के हित-साधन में जो,
निशदिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या,
बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के,
दुख समूह को हरते हैं॥२॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का,
ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्या में यह,
चित्त सदा अनुरक्त रहे॥

नहीं सताऊँ किसी जीव को,
झूंठ कभी नहीं कहा करूँ।
पर धन-*वनिता पर न लुभाऊँ,
संतोषामृत पिया करूँ॥ ३॥
अहंकार का भाव न रक्खूं,
नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को,
कभी न ईर्षा भाव धरूँ।
रहे भावना ऐसी मेरी,
सरल सत्य व्यवहार करूँ॥
बने जहाँ तक इस जीवन में,
औरों का उपकार करूँ॥ ४॥
मैत्री भाव जगत में मेरा,
सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे,
उर से करुणास्रोत बहे॥
दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतों पर,
क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर,
ऐसी परिणति हो जावे॥ ५॥

* स्त्रियाँ 'वनिता' के स्थान पर 'भर्ता' पढ़ें।

गुणी जनों को देख हृदय में,
मेरे प्रेम उमड़ आवे ।
बने जहाँ तक उन की सेवा,
करके यह मन सुख पावे ॥
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं,
द्रोह न मेरे उर आवे ।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित,
दृष्टि न दोषों पर जावे ॥ ६ ॥
कोई बुरा कहो या अच्छा,
लक्ष्मी आवे या जावे ।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या,
मृत्यु आज ही आ जावे ॥
अथवा कोई कैसा ही भय,
या लालच देने आवे ।
तो भी न्यायमार्ग से मेरा,
कभी न पद डिगने पावे ॥ ७ ॥
होकर सुख में मग्न न फूले,
दुःख में कभी न घबरावे ।
पर्वत-नदी--श्मशान--भयानक,
अटवी से नहिं भय खावे ॥
रहे अडोल-अकंप निरन्तर,
यह मन दृढ़तर बन जावे ।

इष्टवियोग—अनिष्टयोग में,
सहनशीलता दिखलावे ॥ ८ ॥

सुखी रहें सब जीव जगत के,
कोई कभी न घबरावे,
वैर-पाप-अभिमान छोड़ जग,
नित्य नये मंगल गावे ।
घर घर चर्चा रहे धर्म की,
दुष्कृत दुष्कर हो जायें ।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना,
मनुज जन्म फल सब पावें ॥९॥

ईति-भीति व्यापे नहिं जग में,
वृष्टि समय पर हुआ करे ।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी,
न्याय प्रजा का किया करे ॥
रोग—मरी—दुर्भिक्ष न फैले,
प्रजा शान्ति से जिया करे ।
परम अहिंसा-धर्म जगत में,
फैल सर्व हित किया करे ॥१०॥

फैले प्रेम परस्पर जग में,
मोह दूर पर रहा करे ।

अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं,
कोई मुख से कहा करे॥
बनकर सब 'युग-वीर' हृदय से,
देशोन्नति रत रहा करें।
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से,
सब दुख संकट सहा करें॥११

—श्री जुगलकिशोरजी मुख्तयार

आत्म-अमरता

अब हम अमर भये, न मरेंगे—
या कारन मिथ्यात दियो तज,
क्योंकर देह धरेंगे ॥ १ ॥
राग-द्वेष जग बन्ध करत है,
इनको नाश करेंगे।
मर्यो अनन्तकाल ते प्राणी,
सो हम काल हरेंगे ॥ २ ॥
देह बिनाशी, हम अविनाशी,
अपनी गति पकरेंगे।
नाशी जाशी हम थिरवासी,
चोखे ह्वै निखरेंगे ॥ ३ ॥

मर्यो अनन्त बार बिन समज्यो,
अब सुख दुःख विसरेंगे ॥
आनन्दघन निपट निकट अक्षर दो,
नहिं समरे सो मरेंगे ॥ ४ ॥
—योगी आनन्दघनजी

चेतावनी

परलोके सुख पामवा, कर सारो संकेत ।
हजी बाजी छे हाथ मां, चेत चेत नर चेत ॥१ ॥
जोर करी ने जीतवुं, खरेखरुं रण खेत ।
दुश्मन छे तुज देह मां, चेत चेत नर चेत ॥ २॥
गाफल रहीश गमार तुं, फोगट थईश फजेत ।
हवे जरूर हुशियार थई, चेत चेत नर चेत ॥३॥
रह्या न राणा राजिया, सुर नर मुनि समेत ।
तुं तो * तरणा तुल्य छो, चेत चेत नर चेत ॥ ४॥
माटे मन मां समजीने, विचारी ने कर वेत ।
क्यां थी आव्यो क्यां जवुं, चेत चेत नर चेत ॥५॥
शुभ शिखामण समझतो, प्रभु साथे कर हेत ।
अंत अविचल एज छे, चेत चेत नर चेत ॥ ६ ॥
—शतावधानी मुनि श्री रत्नचन्द्रजी स्वामी

* तिनका, घास

अन्तरतर हे !

अन्तरतम मम विकसित कर, अन्तरतर हे !
निर्मल कर, उज्ज्वल कर, सुन्दर कर हे !!
जागृत कर, उद्यत कर, निर्भय कर हे !
मंगल कर, निरलस निःसंशय कर हे !!
सब के संग युक्त कर, मुक्त कर बन्धन;
संचारित कर सब कर्मों में शान्त छन्द प्रतिक्षण ॥
चरण पद्म में मम चित स्पन्दित कर हे !
नंदित कर, नंदित कर, नंदित कर हे !!
(हिन्दी अनुवाद) —कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ

आत्म-विचार

बहु पुण्य केरा पुंजथी, शुभ देह मानवनो मल्यो,
तोये अरे ! भवचक्र नो, आंटो नहीं ऐके टल्यो;
सुख प्राप्त करतां सुख टले छे, लेश ए लक्ष लहो,
क्षण क्षण भयंकर भाव मरणे, कां अहो राची रहो?
लक्ष्मी अने अधिकार वधतां, शुं वध्युं ते तो कहो?
शुं कुटुंब के परिवार थी वधवापणुं ए नय गृहो;
वधवापणुं संसारनुं नरदेह ने हारी जओ,
एनो विचार नहि अहो हो! एक पल तमने हवो!!
निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द, ल्यो गमे त्यांथी भले;

ए दिव्य शक्तिमान जेथी, जंजीरे थी नीकले !!
पर वस्तुमां नहि मुंजवो, एनी दया मुजने रही,
ए त्यागवा सिद्धान्त केपश्चात दुःख ते सुख नहि।
हुं कोण छु ? क्यां थी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरूं?
कोना सम्बंधे वलगणा छे ? राखुं के ए परहरूं ?
एना विचार विवेकपूर्वक शान्त भावे जो कर्या,
तो सर्व आत्मिक ज्ञाननांसिद्धान्ततत्त्व अनुभव्यां।
ते प्राप्त करवा वचन कोनुं, सत्य केवल मानवुं ?
निर्दोष नरनुं कथन मानो, 'तेह' जेणे अनुभव्युं।
रे ! आत्म तारो ! आत्म तारो ! शीघ्र एने ओलखो;
सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो, आ वचनने हृदये लखो।
—श्रीमद् राजचन्द्र

आदर्श श्रावक

श्रावक जन तो तेने कहिए,
जे पीड़ पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तोये,
मन अभिमान न आणे रे॥१
सकल लोक मां सहु ने वंदे,
निंदा न करे केनी रे।
वाच काछ मन निश्चल राखे,
धन धन जननी तेनी रे॥२

समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी,
पर-स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले,
पर-धननव झाले हाथ रे॥ ३
मोह माया व्यापे नहिं जेने,
दृढ़ वैराग्य जेना मन मां रे।
सत्य नाम सुं ताली लागी,
सकल तीरथ तेना तन मां रे॥४
वणलोभी ने कपट रहित छे,
काम क्रोध निवार्या रे।
भणे 'नरसैयों' तेनुं दरशन करतां,
कुल एकोतर तार्या रे॥ ५॥
—श्रीनरसिंह मेहता

आत्म-जागरण

उठ जाग मुसाफिर भोर भई,
अब रैन कहां जो सोवत है!
जो जागत है सो पावत है,
जो सोवत है सो खोवत है॥
टुक नींद से अंखियाँ खोल जरा,
ओ गाफिल! रब से ध्यान लगा।

ये प्रीत करन की रीत नहीं,
रब जागत है तू सोवत है ॥
नादान भुगत करनी अपनी,
ओ पापी ! पाप में चैन कहाँ ?
जब पाप की गठरी शीश धरी,
फिर शीश पकड़ क्यों रोवत है ?
जो काल करे सो आज ही कर,
जो आज करे सो अब करले ।
जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया,
फिर पछताये क्या होवत है ?

नाम–जपन

नाम जपन क्यों छोड़ दिया ?
क्रोध न छोड़ा, झूठ न छोड़ा,
सत्य वचन क्यों छोड़ दिया ?
झूठे जग में जी ललचाकर,
असल वतन क्यों छोड़ दिया ?
कौड़ी को तो खूब सम्हाला,
लाल रतन क्यों छोड़ दिया ?
जिहि सुमिरन ते अति सुख पावे,
सो सुमरिन क्यों छोड़ दिया ?
खालस इक भगवान भरोसे,
तन, मन, धन क्यों न छोड़ दिया ?

भाई में भगवान

मैं तेरा तू मेरा प्यारे, मैं तेरा तू मेरा।
मनमोहन तू मेरा स्वामी, मैं हूं चेरा तेरा।
परिहरि मुझको प्रेम विवश करि बना लिया है चेरा॥१
मैं तेरा तू मेरा प्यारे, मैं तेरा तू मेरा।
नाथ-नाथ कहि तुझको टेरा, जानि अलग अनमेरा।
गली-गली बहु तेरा हेरा, मिला न तेरा डेरा॥२
मैं तेरा तू मेरा प्यारे, मैं तेरा तू मेरा।
दीन दुःखी कांधे पर कम्बल मिला पड़ोसी मेरा।
तेरा रूप उसी में दीखा, उमड़ा प्रेम घनेरा॥३
मैं तेरा तू मेरा प्यारे, मैं तेरा तू मेरा।
भाई कह कर गले लगाया, अश्रुबिंदु इक गेरा।
भाई में भगवान मिला, तू गया वह मन का फेरा॥४
मैं तेरा तू मेरा प्यारे, मैं तेरा तू मेरा।

———

विवेक-सूत्र

जीवन की प्रत्येक क्रिया में विवेक रखना चाहिये। अपने कर्तव्य में हित-अहित का भान न रहने से, अविवेक के कारण वही एक क्रिया अपने उसी रूप में प्रतिक्रिया का काम करने लग जाती है—गुण अवगुण बन जाता है। प्रत्येक क्रिया में विवेक रखने से ही वह हितकर हो सकती है। इसके लिये निम्न विवेक सूत्र का पाठ खास-खास गुणों का ध्यान दिला देता है; कहीं एक गुण अविवेक के कारण अवगुण न बन जावे, इसकी चेतावनी दे देता है।

१ समालोचक हो, निंदक नहीं।
२ निर्लिप्त हो, उदासीन नहीं।
३ नम्र हो, चापलूस नहीं।
४ वीतराग हो, अकर्मण्य नहीं।
५ क्षमाशील हो, भीरु नहीं।

६ खरे हो, खारे नहीं।
७ स्पष्ट हो, उद्दंड नहीं।
८ चतुर हो, कुटिल नहीं।
९ मितव्ययी हो, सूम नहीं।
१० गम्भीर हो, मनहूस नहीं।
११ भले हो, दुर्बल नहीं।
१२ प्रेमी हो, पागल नहीं।
१३ न्यायी हो, निर्दय नहीं।
१४ उत्साही हो, जल्दबाज़ नहीं।
१५ धीर हो, सुस्त नहीं।
१६ सावधान हो, शक्की नहीं।
१७ सरल हो, मूर्ख नहीं।
१८ दृढ़ हो, हठी नहीं।
१९ स्वतन्त्र हो, स्वच्छन्द नहीं।
२० सत्याग्रही हो, दुराग्रही नहीं।

— त्यागभूमि से

सामायिक-प्रतिक्रमण।

रागद्वेष त्याग करके समभाव धारण करना सामायिक है। यह व्रत है, जो एक मुहूर्त ४८ मिनिट का किया जाता है। आत्मचिन्तन करने का यह बड़ा ही अच्छा साधन है। सामायिक के काल में आत्मचिंतन की क्रिया ही करनी होती है। सामायिक के समय को व्यर्थ की बातों में नहीं बिताना चाहिये। सामायिक में प्रतिक्रमण किया जाता है, या मुनिमहाराज का सत्संग मिलता है, तो वह ठीक रीति से पूरा हो जाता है। आत्मोन्नति के लिये प्रतिदिन सामायिक करने का नियम बना लेना चाहिये।

सामायिक के काल में आत्मचिन्तन नियम से कर लेना चाहिये। इस पुस्तक का सारा क्रम ही सामायिक के काल में रख लिया जावे तो सामायिक भी सार्थक हो जाय और नियम से आत्म-

चिन्तन भी हो जाया करे। इतने पर भी समय बचे तो धर्म-ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिये। ऐसे स्वाध्याय के लिये सामायिक से बढ़ कर कौन सा अच्छा अवसर मिल सकता है। सामायिक में मन के दोष आत्मचिन्तन करने से, वचन के दोष मौन धारण करने से और शरीर के दोष एक आसन से बैठने से टल सकते हैं।

प्रतिक्रमण——जो व्रत-नियम आदि ग्रहण कर रखे हैं, उनके सम्बन्ध में जो दोष लगे हैं, उनका विचार करके, आत्मनिरीक्षण करके उनके लिये पश्चात्ताप करना और फिर अपने व्रत-नियमों का स्मरण करके उनमें दृढ़ होना प्रतिक्रमण है।

दिन, रात, पक्ष, चातुर्मास और वर्ष भर के दोषों को उनके बन्ध के अनुसार दिवस, रात्रि, पाक्षिक, चातुर्मासिक और संवत्सरी सम्बन्धी प्रतिक्रमण करना व्रतधारियों के लिये तो अत्यावश्यक है, इनके सिवाय दूसरे भी व्रतों के ज्ञान, स्वाध्याय और अपनी भूलों के लिये पश्चात्ताप करने, क्षमा मांगने के लिये प्रतिक्रमण करते हैं। केवल भावुकता के कारण प्रतिक्रमण-सूत्र के पाठ

बोल लेने या सुन लेने में सार्थकता नहीं है। उसको समझ कर, अपने व्रतों में दृढ़ होने से ही विशेष लाभ हो सकता है। क्षमापना भी सच्ची होनी चाहिये, अपने हृदय को शुद्ध करना चाहिये। अपने द्वारा जो दोष और भूलें हुई हों, उनको जान कर आगे नहीं करने का दृढ़ संकल्प कर लेना चाहिये। जो हो चुका, उसको तो भूल जाने में और आगे के लिये सावधान रहने में ही कल्याण है। इतना हो, तब ही सच्चा प्रतिक्रमण हो सकता है।

रात को सोते समय अपने सारे दिन के व्यवहार में अपने से जो दोष हुए हों, उन का विचार करके आत्मनिरीक्षण तो अवश्य ही कर लेना चाहिये।

जो आत्मचिन्तन नियम से करना चाहते हों, उनको प्रतिदिन एक सामायिक तो आवश्य ही करने की प्रतिज्ञा ले लेनी चाहिये।

स्वाध्याय

आत्मा की उन्नति के लिये स्वाध्याय बड़ा अच्छा साधन है। शास्त्र, धर्मग्रन्थ और पुस्तकें पढ़ने से मनुष्य को महात्माओं और विद्वानों के विचार मिलते हैं। इसलिये यह एक प्रकार से उनकी संगति करने के समान ही है। स्वाध्याय से ज्ञान, बुद्धि और अनुभव बढ़ता है। स्वाध्याय का मनुष्य के जीवन पर बड़ा प्रभाव गिरता है। जो जैसे विचार या विषय को पढ़ता रहता है, उसका जीवन भी वैसा ही हो जाता है। अपने स्वाध्याय में उत्तम पुस्तकों को ही स्थान देना चाहिये। शास्त्र, धर्मग्रन्थ, महापुरुषों के जीवन-चरित्र और आत्मज्ञान सम्बन्धी साहित्य पढ़ने से निश्चय ही विचारों में तदनुकूल परिवर्तन होकर जीवन सुधरता है और मनुष्य आत्मोन्नति के मार्ग पर बढ़ने लगता है। किसी

विषय या पुस्तक को मात्र पढ़ लेना ही स्वाध्याय नहीं है, किन्तु स्वाध्याय अपने पांच अंगों से परिपूर्ण होने पर ही सच्चा स्वाध्याय होता है। पांच अंग ये हैं—(१) वाचना- गुरु के पास या स्वयं पढ़ना; (२) पृच्छना—उस सम्बन्ध की अपनी शंका गुरु या अनुभवी से पूछना ; (३) परावर्तना—पढ़े हुए भाग को फिर सोचना-फेरना; (४) अनुप्रेक्षा-अभ्यस्त-पढ़े हुए विषय पर मनन करना; और (५) धर्म कथा—अपना सीखा हुआ ज्ञान दूसरों को सुनाना-समझाना, व्याख्यान चर्चा, लेखन-प्रकाशन आदि द्वारा ज्ञान-प्रचार करना। स्वाध्याय को आभ्यन्तर तप कहा है। मनुष्य के जीवन के निर्माण में स्वाध्याय का खास स्थान हुआ करता है। अतएव अवश्य ही प्रतिदिन थोड़ा बहुत स्वाध्याय करने का नियम रखना चाहिये। थोड़ा-थोड़ा स्वाध्याय करते रहने पर भी मनुष्य कुछ समय में ज्ञानवान हो जाता है। नियम से स्वाध्याय करने का अवसर सामायिक में मिल सकता है।

———

सत्संग

जिसको सत्संग मिल गया, उसका तो जीवन ही सुधर गया समझो। सद्गुरु और सदाचारी मनुष्य की संगति से मनुष्य का जीवन उन्नति के मार्ग पर लग जाता है, क्योंकि सत्संग में हमारे सामने जीवित आदर्श होता है। उसके जैसे विचार और आचार होते हैं, अपना आचरण भी वैसा ही बन जाता है। संगति सत्पुरुषों की ही करना चाहिये। जो जैसी संगति करता है, निश्चय ही वह वैसा ही बन जाता है। महापुरुषों की संगति का प्राप्त होना एक बड़ा सौभाग्य है। प्रति दिन अवश्य ही सद्गुरु का सत्संग करने का नियम रखना चाहिये। जो अपने से ज्ञान, आचार, विचार और अनुभव में बढ़े हुए हैं या समान हैं, उनकी संगति करने से ही जीवन में उन्नति हो सकती है। मूर्ख, व्यसनी और दुराचारी की संगति से बचना चाहिये; ऐसों की संगति में पड़ कर अच्छे से अच्छे मनुष्य का जीवन बिगड़ जाता है।

सदाचारी और उच्च-चरित्र मनुष्य की संगति करने से निश्चय ही अपने ज्ञान और आचार-विचार में परिवर्तन होकर आत्मोन्नति होती है। सद्गुरु का सत्संग प्राप्त होना मानो जीवन को पार लगाने के लिये नौका का मिलना है। सत्संग का अवसर कभी न चूकना चाहिये।

भावना या आत्म-सूचना

अपने मन में एक ही विचार को बारबार लगातार सोचते रहना भावना है। बारबार एक ही विचार को मन में सोचते रहने से आत्मा पर उसी प्रकार के भावों का प्रभाव गिरता है। भावना आत्मा को सूचना देना है, इसीलिये इसको आत्म-सूचना (Auto-suggestion) कहते हैं। हमारा जीवन, हमारा स्वभाव, हमारा स्वास्थ्य और हमारी परिस्थिति हमारी भावनाओं से बने होते हैं। अपने विचारों के अनुसार ही अपना जगत् बन जाता है और वैसा ही प्रतीत होता है। भावना निश्चय ही अपना प्रभाव दिखाती है। भावना एक प्रकार का ध्यान ही है। जो जैसी भावना करता है, वह वैसा ही हो जाता है–'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'।

हम बराबर ध्यान तक नहीं रखते कि चलते-फिरते, उठते-बैठते और बातें करते समय हम कैसे विचार धारण किये रहते हैं—कैसी आत्म-सूचनाएँ अपने आपको देते रहते हैं- कैसी भावना करते रहते हैं। यही कारण है कि अचानक कोई अनपेक्षित (जिसकी आशा तक न की हो) घटना हो जाने पर आश्चर्य करने लगते हैं। एक भी विचार व्यर्थ नहीं जाता। विशाल समुद्र में फेंकी हुई एक कंकरी से उठने वाली लहरों के समान ही मन में सोचे जाने वाले विचार की लहरें न जाने कहाँ तक और कब तक के लिये अपना प्रभाव जमा लेती हैं और समय आने पर फल देती हैं। इसलिये हमेशा सद्विचारों को ही अपने मन में स्थान दो, शुभ भावनाएँ ही करो। समभाव, आनन्द, प्रेम, आशा, उत्साह, आरोग्य और परमार्थ के विचारों को ही मन में धारण करो, हमेशा अपने आपको ऐसी ही सूचना देते रहो। इससे थोड़े ही काल में जीवन में आनन्दमय परिवर्तन दृष्टिगोचर होगा। सुख, शान्ति और सन्तोष से जीवन ओत-प्रोत हो जावेगा।

अपने आपको कभी भी दीन, हीन, दुःखी,

रोगी और निराश मत समझो, न कभी मन में ऐसे विचार ही उठने दो। कोई तुमको ऐसा कहे तो मन ही मन दृढ़ता से उसका प्रतिकार करके अपने को सूचना दो कि मैं ऐसा नहीं हूँ-अच्छा ही हूँ। आत्मा तो अनन्त गुणों से-ज्ञान, शक्ति, सुख, वीरता और सफलता से परिपूर्ण है।

उदाहरण के लिये यहाँ कुछ आत्म-सूचनाएँ (भावनाएँ) लिखी जाती हैं; इनको बारबार अपने मन में बोलते रहना चाहिये और अनुभव करना चाहिये कि, "मैं वास्तव में ऐसा ही हूँ और कोई भी बाहरी विचार मुझ पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता"। चाहें तो ध्यान की विधि से इनका ध्यान भी कर सकते हैं।

आरोग्य के लिये आत्म-सूचना-

मैं आत्मा हूँ। आत्मा तो सर्वदा आनन्द और शक्ति से परिपूर्ण है। उसे कदापि कोई रोग नहीं हो सकता, वह सर्वदा सम्पूर्ण स्वस्थ है। शरीर आत्मा से भिन्न है; शरीर तो नाशवान है, आत्मा नित्य है। मैं शरीर का, अनित्य वस्तु का ध्यान छोड़ कर, आत्मा का, नित्य वस्तु का ही ध्यान

करता हूँ। मैं नीरोग और निरामय हूँ। मैं स्वस्थ और आनन्दमय हूँ। मैं आत्मा हूँ।

सफलता के लिये आत्म-सूचना—

मैं आत्मा हूँ। आत्मा अनन्त शक्तिमान है। इसलिये वह सब कुछ कर सकने में समर्थ है। मैंने जो कार्य हाथ में लिया है, उसको सफल करने की सामर्थ्य मुझ में है। मैं अवश्य ही सफल होऊँगा। मुझ में सफल होने की सब योग्य-ताएँ हैं। विघ्न-बाधाएँ मेरा कुछ नहीं कर सकतीं। मैं उनकी परवाह नहीं करूँगा। मैं सफल होऊँगा।

आनन्द के लिये आत्म-सूचना—

मैं आत्मा हूँ। आनन्द आत्मा का धर्म है। मेरी आत्मा में अनन्त आनन्द है। मैं सदा आनन्द में मग्न रहता हूँ। कोई भी घटना या विचार मुझे अपने निर्दोष आनन्द से हटा नहीं सकते। मुझे सर्वत्र आनन्द ही मालूम होता है। मैं आत्मानन्द में लवलीन रहता हूँ। मैं आनन्दी हूँ। आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

इसी प्रकार आवश्यकता के अनुसार अन्य विषय की भावना की जा सकती है।

घोर चिन्ता और विपत्ति के समय–

कभी कभी मनुष्य के जीवन में ऐसी घटनाएँ हो जाया करती हैं, जिससे उसके मन की शांति सम्पूर्ण नष्ट हुई जान पड़ती है, घोर चिन्ता आ घेरती है, जीवन भार सा हो जाता है और कुछ भी समझ नहीं पड़ता। ऐसी घटनाओं में अपने प्रेमी का देहान्त हो जाना, इच्छित वस्तु का प्राप्त न होना, धन का सर्वथा नाश, घोर अपमान, परीक्षा आदि में फेल हो जाना आदि मुख्य होती हैं। ऐसी घटनाओं से उत्पन्न दुःख की वेदना को सहन न कर सकने में आत्मबल की कमी ही कारण हुआ करती है। अतएव आत्म-ज्ञान के द्वारा आत्मबल प्राप्त करके ऐसे समय मनुष्य दुःख को सहन करने की शक्ति प्राप्त कर अपने चित्त को शान्ति दे सकता है।

इसके लिये निम्न क्रियाओं को अपनी आवश्यकता या रुचि के अनुसार करना चाहिये। जब मन अत्यन्त अशान्त हो उठे, आत्मग्लानि होने लगे और चिन्ता बढ़ने लगे, उस समय इनको करना चाहिये। इनके सिवाय नियम से आत्मचिन्तन अवश्य करना चाहिये और विशेष

करके मंत्रजप इसमें बड़ी शान्ति देता है। इन क्रियाओं से तो मन की अशान्ति के समय ही शान्ति मिल जाती है।

किसी शान्त-एकान्त खुले कमरे में जहाँ ताजी हवा आती हो, बिस्तर पर (बिना तकिये के) चित लेट जाओ। अपने शरीर को एकदम ढीला छोड़ दो, भूल जाओ। मन को शान्त कर दो। धीरे धीरे नाक से १०-१२ गहरे श्वास लो और छोड़ दो। अब नीचे लिखी क्रिया करो।

(१) नवकार मंत्र या ॐ शान्ति का जप धीरे धीरे, अपने मन में शान्ति का भान करते हुए करते रहो। चिन्ता और घबराहट को एकदम भूल जाओ; मंत्र के अर्थ और उसको अनुभव करने की तरफ चित्त को लगाये रहो। जप में इतने लीन रहो कि सब कुछ भूल जाओ। ऐसा करते समय यदि निद्रा आजावे तो अच्छा है, क्योंकि इससे मन में शान्ति के भाव जम जाते हैं, और मस्तिष्क शान्त और प्रफुल्ल हो जाता है।

इसी प्रकार जप करते हुए रात को

सोना चाहिये क्योंकि सोते समय जो अन्तिम विचार मन में रह जाते हैं, उनका जीवन पर बड़ा प्रभाव गिरता है।

(२) उसी प्रकार शान्त लेटे हुए धीरे धीरे गहरा श्वास लो और छोड़ दो। दस बीस बार ऐसा करो, इससे ज्ञानतन्तु में ताजगी पहुँचती है। अब आंखें खोल कर अपने पैरों के अंगूठों पर दृष्टि जमा दो और मन में अपने जीवन की ऐसी किसी घटना का विचार करो जिससे तुम्हें परम आनन्द प्राप्त हुआ हो। इस आनन्द में लीन रहो। इस प्रकार करने से चिन्ता और दुःख के विचार आनन्द में बदल जावेंगे।

जब कभी भी आत्म-ग्लानि, घबराहट, बेचैनी मालूम होती हो तो चाहे जिस अवस्था और स्थान पर हो, धीरे धीरे गहरा श्वास लेते हुए अपने आपको आनन्द, आरोग्य, उत्साह की सूचना देते रहना चाहिये।

(३) ऐसी अशान्त और चिन्तित अवस्था में होने पर आत्म-गुणों का, संसार की नश्वरता

और बारह भावनाओं* का चिन्तन करने से भी आत्मा को शान्ति प्राप्त होती है।

(४) जिस वस्तु का अभाव तुम्हारी चिन्ता का कारण हो, उस वस्तु से हीन और दुःखी मनुष्य का चित्र अपनी आंखों के सामने लाओ और उसकी अपेक्षा अपनी जो अच्छी अवस्था है, उसका विचार करो। इस प्रकार विचार करने से मनुष्य अपने अभाव के दुःख को भुला कर आनन्दमय हो सकता है।

(५) सदा किसी न किसी काम में लगे रहना, सज्जनों की संगति का लाभ लेना, धर्मचर्चा करना, पुस्तकें पढ़ना आदि से भी मन से चिन्ता और भय आदि के दुःखदायक विचार भुलाये जा सकते हैं।

---

* (१) संसार में सब अनित्य है; (२) मृत्यु से कोई किसी को बचा नहीं सकता; (३) इस संसार के चक्र से कब छूटूँगा? (४) आत्मा अकेली ही है; (५) कोई किसी का नहीं है; (६) शरीर मल-मूत्र आदि से दुर्गंधमय है; (७) राग-द्वेष आत्मा के बन्धक हैं; (८) राग द्वेष का त्याग आत्मा की मुक्ति है; (९) तप संयम से आत्मा कर्मों से मुक्त होती है; (१०) लोक का विचार; (११) सम्यक्त्व दुर्लभ है; और (१२) धर्म प्राप्ति कठिन है।

साधन का क्रम

आत्म-चिन्तन के लिये जो साधन पिछले पृष्ठों में दिये गये हैं, उनको नियम से करने का क्रम अपने लिये बना लेना चाहिये। यहां दो क्रम दिये जाते हैं, इनमें से किसी को भी अपनी सुविधा के अनुसार नियत कर आत्मचिन्तन कर सकते हैं। इनके सिवाय भी चाहें तो अपने अनुकूल भी कोई क्रम बना कर आत्म-चिन्तन कर सकते हैं।

(१) आत्मचिन्तन करने के लिये सबसे अच्छा समय प्रातःकाल का है; इस समय सामायिक करके पुस्तक का सारा क्रम कर लेना चाहिये।

ध्यान .... १० मिनिट

ध्वनि--उच्चार .... २ मिनिट

जप (आनुपूर्वी) .... ५ मिनिट

अध्यात्म—पाठ..................२० मिनिट (सब सूक्ति, स्तोत्र, मेरी भावना, एक-दो गायन और विवेक सूत्र)

सामायिक का शेषकाल स्वाध्याय में बिताना चाहिये।

रात्रि को—शांति के ध्यान से मन को शान्त-एकाग्र करके अपने सारे दिन के व्यवहार पर विचार (आत्म-निरीक्षण) करना चाहिये। गुण का ध्यान करके मंत्रजप करके सो जाना चाहिये।

(२) प्रातः—ध्यान, जप, मेरी भावना और विवेक सूत्र।

रात्रि—आत्मनिरीक्षण, ध्यान और जप।